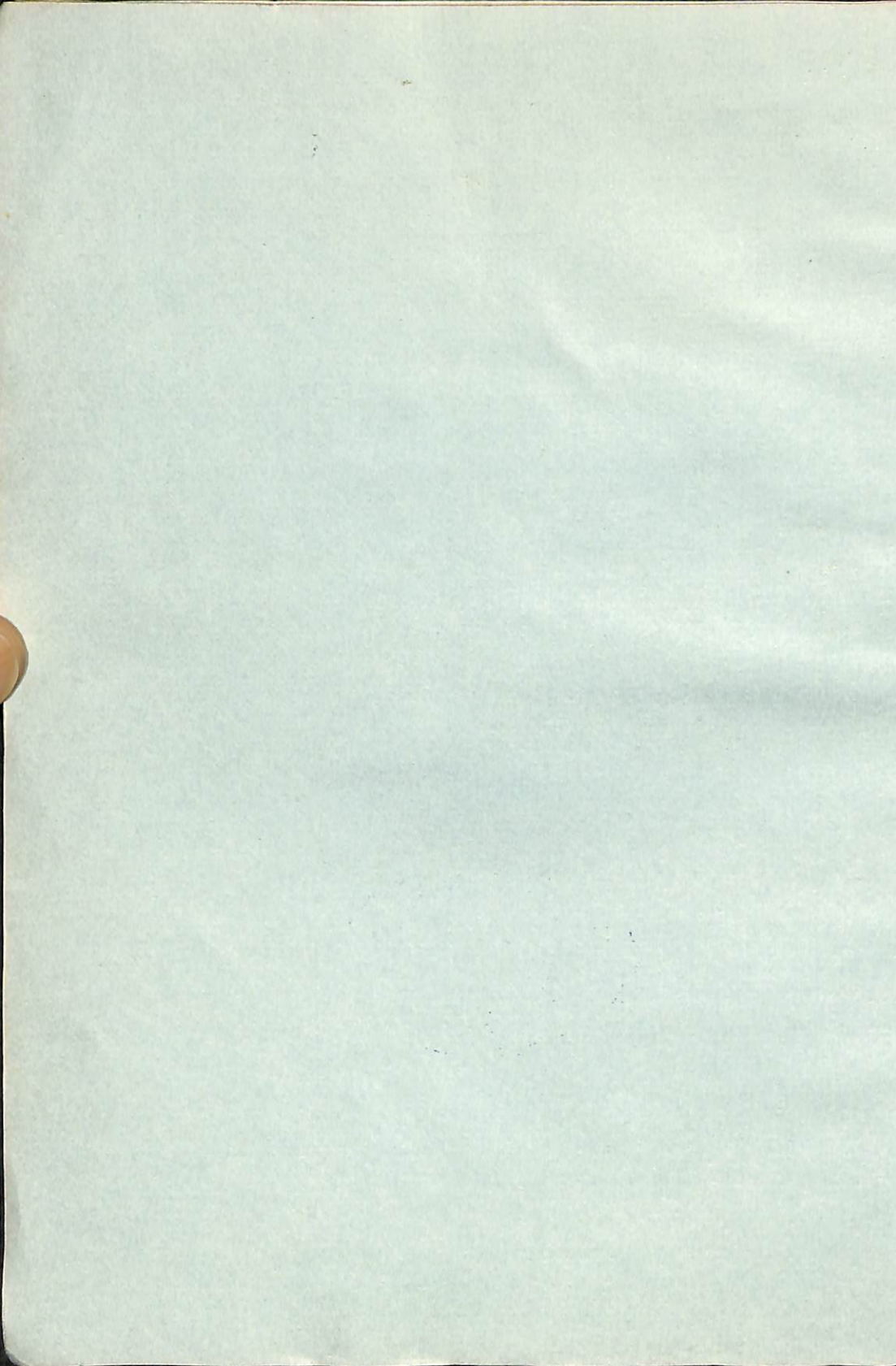


श्री दुर्गा सप्तशती पारिजात सौरभ



प्रवक्ता :

आचार्य भागवतानन्द सरस्वती



श्री दुर्गा सप्तशती पारिजात सौरभ

प्रवक्ता

आचार्य श्रीभागवतानन्द सरस्वती

प्रकाशक

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

पुस्तक प्राप्ति स्थान—

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
श्रीराम धाम मानस मन्दिर
रामदास बाबाश्रम,
चौक सिटी,
पटना-८००००८ (बिहार)



श्री कैलाश चन्द्र माहेश्वरी
'महेश भवन'

खुरजा २०३१३१ (उ० प्र०)
दूरभाष : (०५७३८) २२०४२



सर्वश्री वेद प्रकाश एण्ड सन्स
१८७, सर्राफा बाजार, सदर,
मेरठ कैन्ट-२५०००१ (उ० प्र०)
दूरभाष : (०१२१) ५४०८५१, ५४०२६८



सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रथम संस्करण : २०००
चैत्र शुक्ल नवमी (श्रीराम नवमी)
विक्रमी संवत् २०५०
१ अप्रैल १९९३



न्यौछावर : पच्चीस रुपये मात्र



पुनीत शादमां के प्रबन्ध में
सरस्वती प्रेस, ठठेरवाड़ा, मेरठ ज़हर में मुद्रित
फोन : २३४८६, २३७३३

प्रकाशकीय

या देवी सर्व भूतेषु स्मृति रूपेण संस्थिता,
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।

जगज्जननी जगदम्बा के अतुल स्नेह से गङ्गा-तट पर इस आश्रम में पुनः 'दुर्गा-सप्तशती' के प्रवचन की स्वीकृति पूज्य श्री आचार्य जी ने दे दी। इस स्वीकृति में श्रेय हमारे स्वामी श्री रामानन्द जी तथा सुश्री कुमारी रमा मिश्रा जी को है। गत वर्षों की तरह प्रवचन रिकार्ड हुआ, जिसे अथक परिश्रम, उत्साह और बड़े प्रेम से हमारे श्री एस० एस० त्रिवेदी जी, अवकाश प्राप्त प्रवक्ता, सी०ए०वी० इन्टर कालिज, मेरठ कैन्ट ने मुद्रण हेतु लिपिबद्ध किया है।

इस ग्रन्थ में 'दुर्गा-सप्तशती' के प्रत्येक मन्त्र की व्याख्या नहीं है, और न शाक्त सिद्धांत मात्र का प्रतिपादन है। इसमें पूर्वाचार्यों के ही भावों को स्पष्ट किया गया है। हमारे शास्त्रों में आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तीनों अर्थ समाहित होते हैं। यहाँ आचार्य जी ने मूल ग्रन्थ का आध्यात्मिक स्वरूप, दैनिक जीवन में उसका उपयोग बतलाया है। विशेष रूप से भक्ति शास्त्र को वैदिक सिद्ध करके और इस ग्रन्थ को प्रस्थान-त्रयी से तो सम्बद्ध किया ही है विशेषतः भगवद् गीता के साथ विशेष शैली में तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। जिससे शोधार्थी अध्येता विशेष लाभ उठा सकेंगे।

स्वामी सत्यानन्द

बाबा रामदास आश्रम
रामधाम मानस मन्दिर
मिरचाई गली
पटना सिटी-२०० ००२

आभार

एकैव शक्तिः परमेश्वरस्य भिन्ना चतुर्धा व्यवहार काले ।
पुरुषेषु विष्णु, भोगे भवानी, समरे च दुर्गा प्रलये च काली ॥

यद्यपि अर्द्ध-शताब्दी से अधिक आयु व्यतीत हो चुकी है किन्तु जीवन के वे वर्ष आज भी सुनहले कुछ क्षणों के समान धन्य एवं अविस्मरणीय लगते हैं; जब पीताम्बर पीठ दत्तिया (ग्वालियर के पास) के पूज्यपाद श्री स्वामी जी के चरणों में उनके स्नेहिल सान्निध्य में यापित हुये थे । उनकी असीम कृपा याद आते ही वाणी सूक, कण्ठ अवरुद्ध और लेखनी विरत हो जाती है । अहेतुकी प्रेम तो संतों में ही होता है, वैसा भला दूसरा कोई कहाँ से दे सकता है ? उन क्षणों में जो कुछ अल्पमति अनुसार प्रसाद पा सका, उतने में ही परम आह्लादित एवं आनन्दानुभूति से भाव विभोर होकर धन्य समझने लगा । पराम्बा की कृपा का प्रसाद ही मेरा जीवन है “इतना ही कह सकता हूँ” और मात्र सजल नयन ही कृतज्ञता का अभिनय कर सकते हैं । तभी से “दुर्गा-सप्तशती” ग्रन्थ के सम्बन्ध में कुछ कहने का विचार था; विद्वानों के लेख, उनकी पुस्तकें, विभिन्न टीकायें यदा-कदा देखता रहा; पढ़ता रहा; फिर भी वह स्वप्न साकार न हो सका । मानस पारिजात के प्रकाशन के बाद त्रिवेदी जी बार-बार अनुनय विनयपूर्वक ‘दुर्गा-सप्तशती’ पर लिखने का आग्रह करते रहे । अवसर मिला और उनकी करुणामयी प्रार्थना को कृति रूप में परिणत करने की माँ भगवती ने प्रेरणा दी ।

गीता गङ्गा च गायत्री गोविन्देति हृदि स्थिते ।

चतुर्गकार सँयुक्ते, पुनर्जन्म न विद्यते ॥

के अनुसार हृदय में स्थित माँ गङ्गा ने इस बार अपने पावन तट के जगन्निन्यन्ता मर्यादा पुरुषोत्तम राम के अनन्य भक्त बाबा रामदास के आश्रम में बैठकर बुलवा ही लिया, जो कुछ भी बोला गया, पराम्बा ने ही बोला है । व्यावहारिक दृष्टि से भी मेरा कोई शब्द इसमें अपना मौलिक नहीं है । पूर्व आचार्यों की ही बात है; उच्छिष्ट है, संकलन मात्र है । पाठक या श्रोतागण भी पराम्बा के ही अनन्याश्रित हैं । अतः इस ग्रन्थ से उन्हें जीवन में कुछ प्रेरणा मिले, रस मिले तो माँ की कृपा का ही फल समझें ।

पुनः कृतज्ञतापूर्वक उन्हीं की धरोहर उन्हीं को सादर समर्पित करता हूँ; क्योंकि वे ही सर्व-शक्ति सम्पन्न, सर्वत्र व्याप्त, सर्व-पूज्या जगदम्बा हैं, उन्हें ही सतत नमस्कार है ।

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या,

निशशेष देवगण शक्ति समूह मूर्त्या ।

तामम्बिकामखिल देव महर्षि पूज्यां

भक्त्या चताः स्म विद-धातु शुभानि सा नः ॥दु०स०४/३॥

—आचार्य भागवतानन्द सरस्वती

चैत्र शुक्ल नवमी

(राम नवमी)

१ अप्रैल १९९३

परमार्थ आधम, सप्त सरोवर, हरिद्वार

एवम्

आनन्द वृन्दावन (मथुरा)



श्री हरिः शरणम्

सम्मति

स्वामिवर्य आचार्य श्री भागवतानन्द सरस्वती जी से विरचित मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत दुर्गा-सप्तशती की 'सप्तशती पारिजात सौरभ' नामक व्याख्या की रहस्यमयी चर्चा सुनने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ ।

इस व्याख्या में शब्दों की व्युत्पत्ति के द्वारा आध्यात्मिक संकेत अत्यन्त हृदयोत्साहकारी मिलता है । जैसे चडि कोपे एवं मुडि खण्डने धातुओं से चण्ड एवं मुण्ड शब्द की निष्पत्ति से आध्यात्मिक भाव का झटिति अधिगम हो जाता है ।

आचार्य श्री ने भगवद्गीता से इस ग्रन्थ की तुलना में बड़ा ही कौशल दर्शाया है, जैसे महर्षि वेदव्यास जी के द्वारा दोनों की रचना, दोनों में सात सौ श्लोकों का संग्रथन, एवं सुरथ नाम से अर्जुन का संकेत इत्यादि । 'यो मां जयति संग्रामे' इत्यादि श्लोक पर आपने संग्रामजित्, अहंकार विजेता तथा वीर बलवान् ही शक्ति को वश में कर सकता है, ऐसे भाव बताते हुये शक्ति की उपासना में इनको साधन बताया है ।

इस प्रकार आपने आध्यात्मिक भावों का रहस्यमय चित्रण करते हुये महाशक्ति की उपासना की प्रेरणा देकर अत्यन्त लोक-कल्याण किया है ।

सम्मानित अध्यक्ष

भूतपूर्व व्याकरण विभागाध्यक्ष

वेद-वेदाङ्ग संकायाध्यक्ष

राष्ट्रपति सम्मानित

भूतपूर्व अध्यक्ष

उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी, लखनऊ

भवदीय मङ्गलाभिलाषी

डा० रामप्रसाद त्रिपाठी

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

वाराणसी

आमुख

मौलिक तत्वों का चिन्तन करने से विदित होता है कि तत्वान्वेषी मनीषियों एवं साधकों ने अपनी मान्यताओं की स्थापना अपने-अपने दृष्टिकोण से आस्तिकता या नास्तिकता के आधार पर ही की है जिससे उस या उन तत्वों का विभिन्न नामों से उल्लेख किया है। आस्तिक भाव के साथ दार्शनिक प्रणाली पर चिन्तन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस प्रक्रिया में ज्ञान-विज्ञान के साथ भावना का भी विशिष्ट महत्व है क्योंकि भावना हृदय की आधिभौतिक शक्ति की सूक्ष्म प्रक्रिया है इसमें आप्त वाक्य “न तास्तर्केण साधयेत्” (उस परम तत्व की तर्क से सिद्धि न करे) प्रमाण है। आस्था और भावना के पवित्र सोपानों से ही उस परम तत्व की उपलब्धि होती है।

भारतीय ज्ञान के आदि स्रोत श्रुति-भगवतो ने स्वीकार किया है कि वह परम तत्व एक है :- “एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्त्यग्निः यमं मातरिश्वातमाहुः” । ऋग्वेद १/१६४/६ “भूतस्यजातः पतिरेक आसीत्” पंचभूतों से उत्पन्न जीवों या वस्तुओं का स्वामी एक है। “एकोवशी सर्व भूतान्तरात्मा” सब भूतान्तरात्मा उस एक तत्व के ही आधीन हैं। श्वेताश्वेतरोप निषद् का कथन है :- “एकः देवः सर्वभूतेषुगूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा । कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षीचेथा केवलो निर्गुणश्च ।” अतः स्पष्ट है कि समस्त भारतीय दर्शन सर्वतो भावेन एक तत्व की प्रतिष्ठा करते हैं। नाम, रूप, लिङ्ग, भेद होना नैसर्गिक ही है।

इसी चिन्तन की परिधि में शाक्त-दर्शन का प्रादुर्भाव हुआ; जिसे तत्कालीन आचार्यों ने उस तत्व को ‘अपरिमित शक्ति’

माना । महर्षि मार्कण्डेय ने भी उस मूल तत्व को “शक्ति रूपेण संस्थिता” एक शक्ति रूप में स्वीकार किया है । सृष्टि की उत्पत्ति, पोषण, संहार, का मूल कारण वही एक शक्ति है जिसके अगम्य स्वरूप का वर्णन निगमागम से परे है । वही सब का मङ्गल करें :-

वेदत्रयी वा निगमत्रयी वा यस्या स्वरूपं गदितुं न शक्ताः ।

संसारजन्म स्थिति नाश हेतु सा कापि ‘शक्ति’ कुशलं करोतु ॥

पाश्चात्य वैज्ञानिक उसे ही ‘सुपर पावर’ कहते हैं । हमारे शाक्त ‘परा पराणां परमा’ परा से परा परमा शक्ति कहते हैं । संसार में सद् असद् जो कुछ कहीं भी कोई भी पदार्थ है, उसमें वही शक्ति है । वही एक शक्ति जड़, चेतन, स्थावरजंगम में व्याप्त है :- “एकैव सर्वत्र वर्तते तस्मादुच्यते एका” (अथर्व) जगत् का आधारभूत वही है “आधारभूता जगत्स्त्वमेका” दुर्गा सप्तशती ।

देवी भागवत उसे ब्रह्मरूपा, नित्या, सनातनी, आत्मा की शक्ति, अग्नि की दाहकता की तरह सब वस्तुओं में उसी एक शक्ति को अनुस्यूत कहती हैं :-

सा च ब्रह्म रूपा च नित्या सा च सनातनी ।

यथात्मा च तथा शक्ति यथाऽग्नौ दाहिकास्थिता ॥

वह सर्व रूपा शक्ति विश्व का बीज रूप है, शक्ति पुञ्ज है, सत् एवं सनातन है । वह सब रूपों में सबकी स्वामिनी एवं समस्त शक्तियों से समन्वित हैं :-

विश्वस्य बीजं शक्तिभूते सनातनी ॥

सर्व स्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्ति समन्विते ॥

लक्ष्यालक्ष्यस्वरूप चिद् शक्ति (चैतन्य शक्ति) के रूप में विराट रूप में चारों ओर व्याप्त हैं :-

चितिरूपेण या कृतस्न्मेतद्व्याप्यस्थिता ।

लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपा साव्याप्यकृतस्नं व्यवस्थिता ॥

यही आद्याशक्ति जगत् का आश्रय है, जगत् इसका एक अंश मात्र है, वही विश्व का धारण, सृजन, पोषण, संहरण करती है :-

सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूतत्याकृता हि परमा प्रकृतिः त्वमाद्या ।
त्वयैतत्धार्यते विश्वं, त्वयैतत्सृज्यते जगत्, त्वयैतत्पाल्यते देवि,
त्वमतस्यन्ते च सर्वदा ॥ दु० स० ४

इस शाक्त दर्शन में एकमात्र जो कुछ है वह पराशक्ति ही है। उनके अनुसार शक्ति की व्युत्पत्ति इस प्रकार है :- 'श' ऐश्वर्य वाचक है। विश्व के समस्त ऐश्वर्य 'श' से अभिव्यक्त होते हैं; 'क्ति' पराक्रम वाचक हैं। सृष्टिगत समस्त पराक्रम, बल, ओज और तेज 'क्ति' से व्यञ्जित होते हैं; अर्थात् सृष्टि के षड् (छः) ऐश्वर्य और पराक्रम जिस तत्त्व में अन्तर्निहित है वह 'शक्ति' पद वाच्य है।

इसी तत्त्व को शक्ति या महाशक्ति भी कहते हैं। इसलिए योगीजन इस तत्त्व को स्त्री या पुरुष भेद में भी नहीं मानते—अत एव हि योगीन्द्रियैः स्त्री पुं भेदो न मन्यते 'सर्वब्रह्म-मयं ब्रह्मञ्छ स्वपि नारद ॥ महाशक्ति के बिना यह सृष्टि संभव नहीं। शक्ति के बिना शक्तिमान शिव 'शव' हो जाते हैं "नहि क्षमस्तथात्मा च सृष्टिं स्रष्टुं तथा बिना 'सर्वशक्तिस्वरूपा सा यथा च शक्तिमान् सदा'

शाक्त-दर्शन और ईश्वरवादी दर्शन का आधार तत्त्वतः वह एक ही है। जब वह परम-शक्ति-विश्व रूपधारिणी अपनी इच्छा से अपने में स्फुरण करती है श्रुति "बहुस्याम" तब संसार-चक्र की उत्पत्ति होती है। पराशक्ति शिवशक्ति रूप धारण कर जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण होती है। इसे ही परम वाक् तथा सांविदी कला कहते हैं :-—यदा सा परमाशक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी । स्फूरतामात्मनः पश्येत् तदा चक्रस्य सम्भव । तथा विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् । सुधी पाठक

वृन्द स्वत ही निम्न दो श्लोकों से दोनों दर्शनों के समन्वय भाव का अवलोकन कर सकते हैं :—

भागद्वयवती यस्मात् सृजति सकलं जगत ।

तत्रैकभागे सा प्रोक्तः सच्चिदानन्द नामकः ॥१॥

मायाप्रकृति संज्ञास्तु द्वितीयाभाग इरितः ।

सा च माया पराशक्ति मस्यहमीश्वरी ॥२॥

जैसा पहले कहा जा चुका है कि आस्तिकवाद में भावना की प्रधानता होती है, इसी से भक्ति की प्राप्ति होती है । भक्ति की आत्मैक्यता से शक्ति या शक्तिमान अथवा भगवती एवं भगवान् का सामीप्य एवं सायुज्य उपलब्ध होता है अतः शक्ति साधकों ने उस सर्जनात्मक व्यापार विस्तार के कारण महनीया माता के रूप में स्वीकार किया है । वह मातृ शक्ति भाव रूप में अलौकिक और कार्य रूप में लौकिक है “मातृ देवो भवः” का उद्घोष सर्वप्रथम मातृशक्ति-पराशक्ति की ही मान्यता है । यही सृष्टि का मूल तत्व है ।

शैव, वैष्णव, सौर, गाणपत्य और शक्ति वैचारिक एवं साधना परक सम्प्रदाय भी वस्तुतः एक ही सनातन धर्म के विविध रूप हैं । आसेतु-हिमालय एवं चतुर्दधि पर्यन्त विशाल भारत धराधाम की वेश-भूषा, भाषा तथा जलवायु एवं ऋतुएँ भी विविध ही हैं; किन्तु भारतीय जन-जीवन में इन विविधताओं जागतिक एवं आध्यात्मिकता, को एकरूपता प्रदान करने वाले जीवन एवं संस्कारों की अनुप्राणित करने वाले, इहलौकिक एवं पारलौकिक सिद्धियाँ तथा मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाले ग्रन्थों में वाल्मीकि रामायण, रामचरितमानस, श्रीमद्भगवद्गीता, महाभारत के साथ-साथ दुर्गा-सप्तशती भी अमूल्य रत्न-परिपूरित मञ्जूषा रूप लोक प्रिय ग्रन्थ है । जिससे भक्तजनों को सदैव प्रकाश एवं बल मिला है । इस रहस्यमय सिद्ध ग्रन्थ की गुणवत्ता और माहात्म्य इसके उपासक-साधक ही जान सकते हैं । यह

सभी अलपित मनोकामनाओं की पूर्ति हेतु स्वयं उद्घोष करता हैं
 “यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम्”

‘मेरे प्रसाद (अनुग्रह) से मेरे भक्त-जन परम ऐश्वर्य के साथ जिस कामना की अभिलाषा करेंगे, उसे निश्चित रूप से प्राप्त करते हैं ।’

इस प्रकार अनेक रहस्यमय अलौकिक शक्तियाँ तथा तत्त्वों से परिपूरित मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत इस “दुर्गा-सप्तशती” के कथन विषयों की विवेचना, सारगर्भित व्याख्या, समन्वयात्मक चिन्तन और उसे जीवन में व्यवहारिक रूप में उतारने-वरतने की सरणी हेतु इसके कीलित, तान्त्रिक ग्रन्थियों का उन्मोचन और आध्यात्मिक तत्त्वों का उद्घाटन महामान्य भारत प्रसिद्ध पुराण निगमागम-षट् दर्शनों के व्याख्याता श्रीमद्भागवत तथा रामचरितमानस के तत्त्वोपदेष्टा, तपो-पूत-काय परमहंस परिव्राजक शिरोमणि पूज्यपाद आचार्य श्री भागवतानन्द सरस्वती महाराज (परमार्थ निकेतन, हृषिकेश) आनन्द धाम वृन्दावन जी ने अपने प्रवचनों के माध्यम से किया है जिसे जन-हिताय “सप्तशती पारिजात सौरभ” ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है; जो साधकों और भक्तों के लिए परमोपयोगी सिद्ध होगा ।

जिज्ञासु पाठक जब पारिजात-सौरभ का मनोयोग से अध्ययन और मनन करेंगे तो उन्हें वैदिक, दार्शनिक एवं शाक्त दर्शन के तत्त्वों का समन्वयात्मक बोध होगा । यद्यपि आचार्य श्री का लक्ष्य चिन्तन-मनन के उसी एक केन्द्र बिन्दु तत्त्व को भाषित करना है । तथापि सामान्य जन हिताय यन्त्र-तन्त्र मन्त्रों की साधना और फल श्रुति भी प्रतिपादित की हैं । वस्तुतः आध्यात्मिक मर्मों के गवेषणात्मक बोध की जिज्ञासा तो आचार्य चरणों में बैठकर उनके प्रवचनों को सुनकर ही शान्त होती है; किन्तु क्षणिक शान्ति को स्थायीत्व एवं शाश्वत बोध को

अमरता प्रदान करने के लिए 'सप्तशती पारिजात सौरभ' का चिन्तन-मनन एवं अध्ययन अनिवार्य है, जो महाराज श्री की अनुपस्थिति में भी तात्त्विक बोध के साथ-साथ इस मातृशक्ति के रहस्य एवं चमत्कार से परिचित करायेगा ।

प्रचार-प्रसार से दूर रहने वाले सन्तों की सिद्ध-वाणियों को संगृहीत कर सर्व जनहिताय ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित करना महान उपकार है क्योंकि सद्ग्रन्थों के प्रचार से मानव संस्कृति का अभ्युदय होता है । इसे प्रकाशित कराने का श्रेय पटना-सिटी (पाटली पुत्र) में स्थित श्रीराम-धाम मानस-मन्दिर के कर्मठ संचालक स्वामी श्री सत्यानन्द जी सरस्वती जी को है; जो स्तुत्य है ।

माँ जगदम्बा विश्व के समस्त मानवों को सुख-शान्ति का वरदान दें, यही हमारी कामना है :—

प्रणतानां प्रसीद त्वं देवी विश्वार्तिहारिणी,
त्रैलोक्य वासिनामीड्येलोकानां वरदाभव ।

विश्व की पीड़ा दूर करने वाली देवी ! हम तुम्हारे चरणों में नत मस्तक हैं । आप प्रसन्न होइए । तीनों लोकों के निवासियों की पूजनीय माँ ! सबको वरदान दो ।

महाशक्तिमहं वन्दे, मातृवत् स्नेह दायिनीम् ।
आचार्य चरणं नौम्युक्तं, पारिजात सौरभम् ॥

सम्पादित :

एस. एस. त्रिवेदी

ए-३१, शिवाजी कालोनी

मेरठ कैन्ट ।

आचार्य श्री सूर्यदत्त शास्त्री 'रक्ताभ'

महर्षि गर्गाचार्य ज्ञानपीठम्

सूर्यलोक, धर्मशाला, घाट

पटना सिटी-२ (बिहार)

सम्पादकीय

नवीन प्रकाशनों की बाढ़ में, लोकेषणा के व्यामोह के कारणों से देवी-जागरणों की कलियुगी भक्तों की अपार भीड़ का ऐसा सामुद्रिक ज्वार उमड़ रहा है जिसमें अमूल्य रत्न विलुप्त हो जाते हैं। यह भी सर्व विदित है कि अथाह जल राशि का स्वामी होने पर भी सागर किसी की पिपासा शान्त करने में अक्षम है; क्योंकि उसके क्षार जल में यह क्षमता है ही नहीं समुद्र की महत्ता के कारण तो दूसरे ही हैं। इस कलिकाल में विद्वानों, संतों, महात्माओं का भी अभाव नहीं है और एक से एक बढ़कर सिद्ध महात्मा अपनी सिद्धियों के चमत्कार से अथवा प्रारब्ध से या वैयक्तिक कौशल से राजकीय प्रश्रय से अभिवन्दित तथा अर्चित होते हुए उच्च गद्दियों पर आसीन हैं। उद्योग-पतियों, नेताओं तथा मंत्रियों के भी अलग-अलग स्वामी हैं। ऐसी स्थिति में जन-साधारण तथा स्वाध्यायी विद्वानों की पहुँच सन्तों, महात्माओं के चरणों तक असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। इस कथन से मेरा यह प्रयोजन नहीं है कि सन्तों या महात्माओं की उदारता, निष्कामिता या विद्वता अथवा निरीहता एवं उन्मुक्तता का अभाव है। भला वसुन्धरा-रत्नगर्भा माँ भारती ऐसे महामना उदार पुत्रों से विहीन कैसे हो सकती है? आज भी वह इस गरिमा से परिपूर्ण रूपेण मंडित है। ऐसे ही महिमान्वित सन्त प्रवरों में से एक श्रद्धेय आचार्य भागवतानन्द जी सरस्वती माँ सरस्वती के वरद-पुत्र हैं, जिनका करुणार्द्र हृदय सदैव 'सर्वत्र-सर्व-जन-हिताय' द्रवित रहता है।

“श्री दुर्गा-सप्तशती पारिजात सौरभ” प्रस्तुत ग्रन्थ महाराज श्री के माँ पराम्बा के प्रेमपूरित करुणाद्राप्लावित हृदय-निसृत भक्तिरसामृत वर्षण है; जो सामान्यजन से लेकर मूर्धन्य विद्वद्वृन्द के लिए समान रूप से स्पृहणीय तथा कल्याण करणीय है। ग्रन्थ

को उपादेयता एवं उपयोगिता तो सुधीजन ही बता सकेंगे किन्तु सौन्दर्य लहरी, दुर्गा-महिमा, षट्चक्रनिरूपण, वरिवर्या रहस्य आदि अनेक ग्रन्थों के जीवन-ग्राह्य बोध का समावेश ग्रन्थ का एक बार सिंहावलोकन मात्र से दृष्टिगोचर कर सकेंगे। इस तथ्य को किसी प्रकार नकारा नहीं जा सकता। जिन्होंने महाराज श्री के प्रवचनोमृत का पान किया है वे भली-भाँति जानते हैं कि कम से कम समय में कम से कम शब्दों में अधिकतम दुरुहज्ञान को सहज आत्मीय करा देने की कला में वे सिद्ध-हस्त हैं; 'भागवत पारिजात' तथा 'मानस-पारिजात' इसके ज्वलंत दृष्टांत हैं। लोकप्रियता इससे अधिक क्या होगी कि एक ही वर्ष में 'भागवत पारिजात' की एक प्रति भी अवशेष नहीं रही। तब उनके समस्त ज्ञान को लिपिबद्ध करने की क्षमता कैसे हो सकती है? दूसरे टैप निर्जीव से चेतनानंद की अभिव्यक्ति और वह भी सजीवता-सम्पन्न उल्लासमय कैसे बनी, यह आचार्य श्री का आशीर्ष ही है।

इस सम्बन्ध में मेरा वैयक्तिक यही निवेदन है कि श्रद्धा के साथ सन् १९४४ से प्रत्येक नवरात्र में 'दुर्गा-सप्तशती' का पाठ कर्म-काण्ड के विधि विधान के साथ करते रहने पर भी सहज अनुराग और जीवन-दर्शन में बदलाव नहीं आया था जो लिपिबद्ध करने पर पराम्बा के साथ नैसर्गिक आत्मीयता और जीवन-दर्शन की व्यावहारिकता का बोध हुआ, वह अपने आप में स्वयं एक महती उपलब्धि है। अतः ग्रन्थ प्रत्येक जन-जन के लिए अत्यन्त अपेक्षणीय है।

अन्त में इस ग्रन्थ में जो पद, वाक्य, विन्यास अथवा वर्तनी की अशुद्धियाँ हैं; वे सब मेरी भूलें हैं, उनके लिये मैं सभी से क्षमा-याचना करते हुए पुनश्च निवेदन करता हूँ कि छिलके के कारण जैसे आप केले का त्याग नहीं करते, अपितु उसके गुणों के कारण उसका विविध रूपों में प्रयोग करते हैं उसी प्रकार इस ग्रन्थ का अवश्य स्वाध्याय कर कामना-सिद्धि कल्पतरु को न भूलें।

ग्रन्थ की साज-सज्जा, मुद्रण की सुन्दरता, तन्त्रों के ब्लाक और यहाँ तक कि प्रूफों के संशोधन में सहयोग और उचित स्थलों के संयोजन में प्रेस के प्रबन्धक एवं स्वामी पुनीत शादमां का हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने अपनी अत्यधिक व्यस्तता वैविध्य बहुमुखी विस्तृता के होते हुए भी इस कार्य-सम्पन्नता में अभिरुचि ली। यद्यपि इससे पूर्व मैं श्री पुनीत जी से परिचित नहीं था, परिचय का श्रेय श्री वेद प्रकाश जी (बिजली वाले) महामन्त्री, औषड़नाथ मन्दिर समिति काली पलटन मेरठ कैन्ट को है जिन्होंने यह प्रकाशित होने के लिए दी। धर्म के प्रचार-प्रसार में संलग्न, साधु-सन्तों, महात्माओं के अनन्य प्रेमी भक्त, उत्साही युवक पुनीत जी से प्रकाशन-विलम्ब के कारण कभी-कभी खीज भी हुई, किन्तु उनकी मन्द मुसकान और विनम्र स्वभाव में यह सब बालू रेत की भित्ति बनकर रह गई। अतः उनसे यह आग्रह करते हुए कि समय की महत्ता को समझते हुये ही धर्मानुष्ठानों में द्विगुणित उत्साह के साथ भाग लेकर यशस्वी बनें। यही शुभ कामना है। और यही माँ जगदम्बा से प्रार्थना भी।

इसमें जो है, जैसा है वह सब गुरु चरणों का विद्वच्चरवण-चञ्चरीक प्रसाद और सब त्रुटियाँ मेरी हैं।

एस० एस० त्रिवेदी

ए-३१, शिवाजी कालोनी

मेरठ कैन्ट।

अनुक्रमणिका

प्रकाशकीय	iii
आभार	iv
सम्मति	vi
आमुख	vii
सम्पादकीय	xiii
१ द्वार प्रवेश	१
२ दुर्गा-सप्तशती	१२
३ अर्गला	२१
४ कीलकम्	२४
५ रात्रि-सूक्त	३१
६ प्रथमोऽध्यायः	३२
७ ध्यानम्	३७
८ मध्यम चरित्र-द्वितीयोऽध्यायः	६६
९ तृतीयोऽध्यायः	७७
१० चतुर्थोऽध्यायः	८६
११ पंचमोऽध्यायः	९४
१२ षष्ठोऽध्यायः	१०१
१३ सप्तमोऽध्यायः	१०३
१४ अष्टमोऽध्यायः	१०५
१५ नवमोऽध्यायः	१०८
१६ दशमोऽध्यायः	१११
१७ एकदशोऽध्यायः	११५
१८ द्वादशोऽध्यायः	११६
१९ त्रयोदशोऽध्यायः	१२१
२० उपसंहार	१२३
२१ क्षमा प्रार्थना	१२५
२२ दुर्गाद्वात्रिंशन्नामममाला	१२६
२३ देव्य परार्धक्षमापन स्तोत्र	१२६
२४ श्री दुर्गा जी की आरती	१२८
२५ बगला अष्टोत्तरनामस्तोत्रम्	१२६
२६ सप्तश्लोकी दुर्गा	१३०



भगवती पराम्बा माँ बगुलामुखी
(पीताम्बरा पीठ, दत्तिया)

माँ का तुमको प्यार मिला है ।

मत समझो तुम हो एकाकी,

नहीं कोई जग में अवलम्ब मिला है

जब-जब ध्यान किया तुमने,

उसका ही सार-सम्भाल मिला है ।

माँ का तुमको प्यार मिला है ॥

सरिता के कल कल निनाद में

और सुमनों के मधुर हास में

भ्रमरों के मधुरिम गुञ्जन में

उसका ही स्वर साकार मिला है । माँ का तुमको.....।

जग-वैभव के काम भोग में

यतियों के अविराम योग में

प्रियतम के दारुण वियोग में

उसका ही आधार मिला है ॥ माँ का तुमको.....।

ज्ञानी की गहन चाह में

दीनों की करुण आह में

भ्रमियों की विषम राह में

वह जीवन पतवार मिला है ॥ माँ का तुमको.....।

तन्त्र-मन्त्र के गहन विज्ञान में

दुःख दैन्य के विषम विधान में

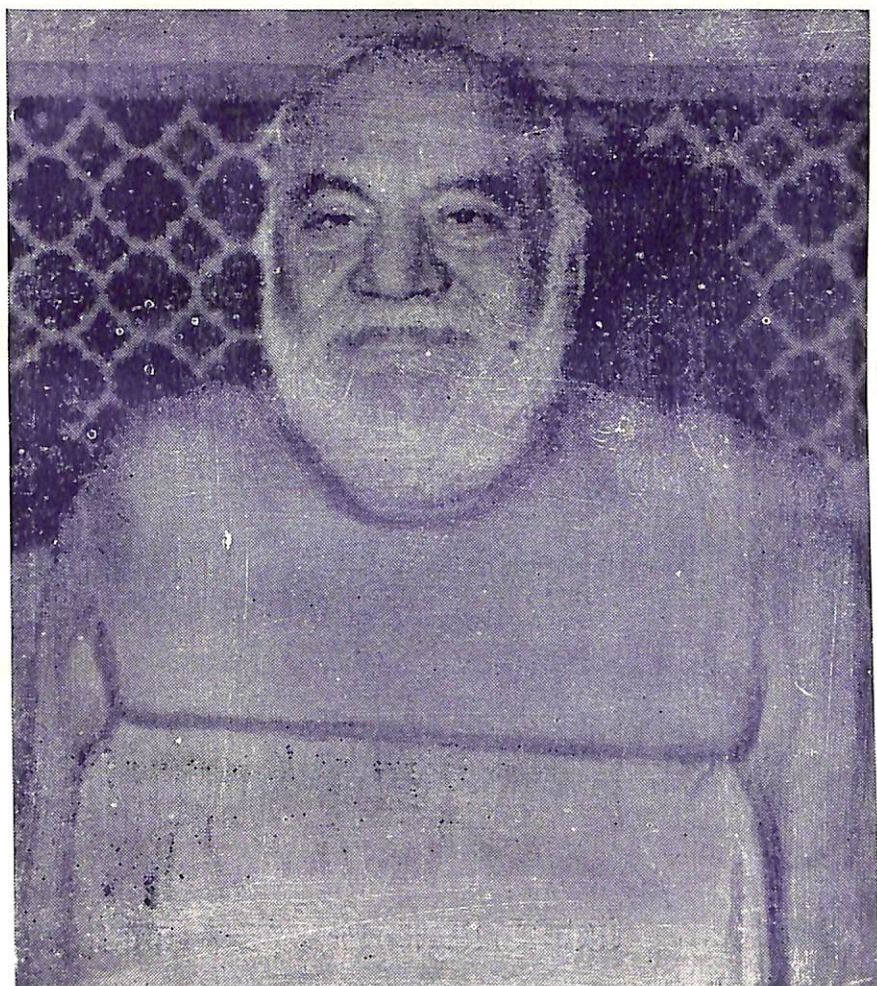
शान्ति सौम्य संयुक्त विहान में

उसका दिव्य विचार मिला है ॥ माँ का तुमको.....।

—कुमारी रमा मिश्रा

जिन चरणों से पाया प्रकाश
रुनेहिल नयनों से सुधाधार
वे ही गुरुदेव कृपा आगार
उनको सादर अर्पित साभार

—आचार्य प्रवक्ता
भागवतानन्द



राष्ट्रगुरु पूज्य स्वामी जी
पीताम्बरापीठ, दतिया

गुरु-वन्दना

कैसा अनुपम जादू है ?

गुरुदेव तुम्हारे चरणों में ।

जग के सब रस फीके पाये

जब रस आया इन चरणों में ॥ १

बुनियाँ के विषयों में भटकी

विष ही उन सब में पाया ।

सुख-शान्ति नहीं लव-लेश मिली

घबराकर जग को ठुकराया ॥

प्रभु कृपा हुई गुरुदेव मिले

लगी लगन तुम्हारे चरणों में । २

गुरु-ज्ञान की पावन गंगा में,

जब मुँह धोया तो नेत्र खुले ॥

मोह-मिटा स्वप्निल जग का

कलुषित मन के सब पाप धुले ।

क्षण - भंगुर जग छूट गया

सुधा मिली गुरु के चरणों में ॥ ३

ममता के रिश्ते नाते छोड़े,

घर बाहर से मुख मोड़ लिया

मन-बुद्धि-चित्त अहंकार त्याग-

गुरु चरणों से नाता जोड़ लिया ॥

अब जीवन ज्योति मिली गुरु चरणों में

कैसा अद्भुत जादू है ?

गुरुदेव तुम्हारे चरणों में ॥ ४



पूज्य स्वामी श्री आचार्य श्री भागवतानन्द जी
सरस्वती

श्रीहरिः

पराम्बायै नमः

श्री दुर्गा सप्तशती पारिजात सौरभ

द्वार - प्रवेश

जपो जल्पं शिल्पं, सकलमपि मुद्रा विरचनम् ।

गतिः प्रादक्षिण्यं भ्रमणमशनाद्याहुति विधिः ॥

प्रणामः संवेश सुखमखिलमात्मार्पण दशा ।

सपर्या पर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम् ॥ सौ० ल० २७ ॥

हे करुणामयी माँ ! मैं आपकी पूजा उपर्युक्त क्रम से कर रहा हूँ, क्योंकि आपका एक अबोध बालक यही सहज रूप में कर सकता है :—

मेरी बातचीत ही आपका जप है, मुद्राओं का रूप शिल्प है, चलना - फिरना ही प्रदक्षिणा है, खाना - पीना - भोजन आदि करना आपके लिए हवन है और शयन करना ही आपके लिए प्रणाम है । यही सदाचार - पूजा आप सदा स्वीकार करें यही सम्पराय है । सम्पराय का स्पष्टीकरण कर लेना अनिवार्य है :—

सम्पराय—सम्यक् परे काले देह पतनादूर्ध्व यते - गम्यते,
इति सम्परायः परलोकः तत्प्राप्ति योजना साधन विशेषः
सम्परायः ।

अर्थात् परलोक की प्राप्ति का उत्तम साधन 'सम्पराय' है । नारायण, नारायण, नारायण, नारायण ! नमो महद्भ्यः ब्राह्मणेभ्यो नमो नमः । परमात्मा स्वयं प्रेम स्वरूप है निर्विकार, निराकार है, तथापि कृणावश द्रवित होकर ब्रह्मादि रूपों द्वारा संसार का सृजन, पालन तथा संहार करता रहता है । इसके मूर्त

एवं अमूर्त दोनों रूप बृहदारण्यक - उपनिषद् में स्पष्ट हैं । मूर्त रूप में वह पराशक्ति ही है । उसी की करुणा से वही निराकार परमात्मा साकार होकर लीला किया करते हैं ।

इसका प्रमाण लोकवत्तु लीला कैवल्यम् (ब्रह्मसूत्र) में भी है । वही कभी राम, कभी घनश्याम बनकर दुष्टों का दलन एवं भक्त - जनों का पालन करते हैं ।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।

अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृति रष्टधा ॥ गीता अध्याय ७/४

मूर्त रूप में—भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार ये आठ प्रकार की प्रकृति जो गीता में कही गई है, वही महाकवि कालीदास ने अपनी विश्व-विश्रुत कीर्ति प्रसारिणी कृति 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक के मङ्गलाचरण के इस श्लोक में इस प्रकार बतलाई है—

या सृष्टिः सृष्ट्युराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुति विषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्
यामाहुः सर्वबीज प्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभि खतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः ॥ अभि.शा. १

गीता में कथित अष्टधा—आठ प्रकार की प्रकृति र—सूर्य, चन्द्र तथा यजमान रूप तीन का अन्तर है, वही इन तीनों के स्थान पर मन, बुद्धि, अहंकार है—

परमात्मा का यह मूर्तरूप भक्तों के प्रति अनुग्रह करता है और अमूर्त स्वरूप आत्मानन्द में स्थित रहता है । “एको देवः सर्वभूतेषु गूढः” इस श्रुति वचन के अनुसार प्राणी मात्र में वही एक परमात्मा है । इस निश्चय में समर्थ केवल एक मनुष्य योनि है । मनुष्य ही अपने आत्मस्वरूप को पहचानने में सक्षम है । यह विचित्र जगत् परमात्मा का ही तो रूप है, किन्तु इसका सृजन शक्ति की कृपा से ही होता है । यह शक्ति सर्वत्र सतत् अबाध गति से अपना कार्य कर रही है । पृथ्वी में धारणा; जल

में आप्यायन, अग्नि में दाहिका, वायु में गति, आकाश में व्यापन तथा चेतन प्राणी में बुद्धि शक्ति रूप में वही पराशक्ति है। भगवान् रेणुकाचार्य जगत् सृष्टि के प्रसङ्ग में परमात्मा को सर्वज्ञ, सर्वशक्ति कहते हैं। यदि उनमें ऐसी शक्ति न होती, तो इस चित्र-विचित्र शक्तियों से परिपूरित जगत् का निर्माण वे कैसे कर पाते ? अवएव परमात्मा शक्ति-विशिष्ट ही है। यह सिद्धान्त आचार्य प्रवर ने त्रेता-युग में निश्चित किया था।

श्वेताश्वतर श्रुति असंदिग्ध रूप से परमात्मा की विविध पराशक्तियों का वर्णन करती है। 'स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च' इस मंत्र के तात्पर्य का पर्यालोचन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि परमात्मा में शक्ति स्वभाव सिद्ध है। ज्ञान, बल, क्रिया आदि रूप से उसके विविध प्रकार हैं। मन्त्राक्षरों में ही 'स्वाभाविकी' पद का प्रयोग शक्ति की नित्यता का घण्टा घोष है। इसी मन्त्र के साथ दूसरी श्रुति 'प्रज्ञा च तस्मात्प्रसृता पुराणी' कहकर सूचित करती है कि अनादि सिद्धा प्रज्ञाचिच्छक्ति परमात्मा से ही प्रकट हुई है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि परमात्मा ही सर्व-शक्तियों का उद्गम एवं विकास स्रोत है।

यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता (२.७.६) में 'स ह स्वस्त्रा-म्बिकया' वाक्य परमात्मा की नित्य शक्ति का ही द्योतक है। तै० सं० (४.५,८) में सोम पद का अर्थ "उमा सहित" ही है। परमात्मा में शक्ति की नित्यता और समवाय सम्बन्ध से उसका होना स्वतः सिद्ध है। समस्त लोक के निर्माण में शक्ति समवायिनी है। कार्य में कारण का—जैसे घट में मृत्तिका का नित्य सम्बद्ध होना 'समवाय' है। शक्ति का समवाय सम्बन्ध से रहना और परमेश्वर के स्वरूप का अनुकरण करना सप्रमाण ही है। श्री रेणुकाचार्य ने उत्तम रीति से इसका उपपादन किया है। सिद्धान्तः— शिखामणि में इसका यह स्वरूप है—

यथा चन्द्रे स्थिरा ज्योत्स्ना विश्ववस्तु प्रकाशिनी ।

तथा शक्ति तिमिराख्या प्रकाशे ब्रह्मणि स्थिरा ।

अन्तः करण रूपेण जगदङ्कुर रूपतः

यस्मिन् विभाति चिच्छक्तिर्ब्रह्मभूतः स उच्यते ॥

अर्थात् समस्त वस्तुओं को प्रकाशित करने वाली चन्द्रिका जैसे चन्द्रमा में स्थिर रहती है वैसे ही सकल चराचर पदार्थ-प्रकाशिका की विमर्श-शक्ति प्रकाश स्वरूप परमात्मा में स्थिर रहती है । यह शक्ति परमात्मा में मूलाहङ्कार एवं सूक्ष्म जगत् के रूप में विराजमान है । इसी को चिच्छक्ति या विमर्श शक्ति कहते हैं । ऐसे शक्ति विशिष्ट परमात्मा को ही भवरोग निवारक होने के कारण रुद्र, सर्व मंगलकारी होने से शिव और विश्व - व्यापी होने के कारण परब्रह्म कहा जाता है । यही सच्चिदानन्द स्वरूपिणी चिच्छक्ति है । परमात्मा के विनोद - काल में चित्र - विचित्र जगत् के निर्माणार्थ त्रिगुणात्मिका माया के नाम से यही प्रसिद्ध है ।

‘म - शिवं अयति’ माया - प्रकृति, मायी महेश्वर है ।

म शिवं परमं ब्रह्म प्राप्नोतीति स्वभावतः ।

मायेति प्रोच्यते लोके ब्रह्म तिष्ठता सनातनी (सिद्धागम)

यही शक्ति विशिष्ट परमात्मा ‘बहु स्याम’ ‘प्रजायै ऐक्षत्’ अनेक होऊँ की इच्छा करते हैं, तभी सृष्टि होती है । अतः जगज्जननी जगन्माता कहलाती है ।

शक्ति उपासना भी अपौरुषेय वेद से ही प्राप्त है—देवी सूक्त में कीर्ति, बुद्धि, लज्जा आदि रूपों में इसका प्रतिपादन किया है । वेद में—अजामेका लोहित शुक्ल कृष्णा तथा, या प्राणेन सम्मवत्यदितिर्देवतामयी गुहां प्रविश्य तिष्ठति या भूते भिर्यजायत एतद् वै तद् (क० २/१/६१) देवतामयी अदिति प्रकट होकर बुद्धि में प्रविष्ट होती है, वही पञ्चभूतों में दीखती है ।

पुराणों में सीता, लक्ष्मी, राधा, उमा आदि नामों से यही शक्ति अभिहित है जो 'केनोपनिषद्' के यक्ष प्रसङ्ग में ब्रह्म-विद्या होकर देवों को उपदेश देती है। ऋग्वेद में यही वाक्-शक्ति है। सांख्य-दर्शन में इसी का नाम 'अमृता' है। कहा है—**पुरुषे षोडश कले तामाहुमृतां कलाम् ।**

ऋषियों के विचार से प्रतिपाद्य वस्तु का प्रतिपादन पुराण, श्रुति, ध्वनि, तेज, प्रभा इन पांच प्रकार से होता है। इसी क्रम से उनका वर्णन भी है। इसी देवी से अवतारों का प्राकट्य इस क्रम से प्रतिपादित है। देवी के दायें हाथ के अंगूठे से **मत्स्य**, तर्जनी से **कूर्म**, मध्यमा से **वराह**, अनामिका से **नृसिंह**, कनिष्ठा से **वामन** और बायें हाथ के अंगूठे से **परशुराम**, तर्जनी से **राम**, मध्यमा से **कृष्ण**, अनामिका से **बुद्ध** जी प्रकट हुये हैं।

कश्मीर की पावन कन्दराओं से लेकर कन्या कुमारी तक, कच्छ से लेकर कामाख्या तक सम्पूर्ण भारत में इस पराम्बा शक्ति की अनेक स्थलों पर ख्याति प्राप्त सिद्ध पीठें हैं, जहाँ माँ के परम उपासक उपासना के माध्यम से अभीष्ट प्राप्त करते हैं ये सिद्ध पीठें सर्वत्र हैं जिनमें काशी, काञ्ची, मलयगिरि, विन्ध्य मालावार, मालवा, गुजरात, दतिया, प्रयाग, बंगाल तथा नेपाल कामाख्या आदि में विशेष प्रसिद्ध हैं।

यही शक्ति दस महा विद्याओं के रूप में वर्णित है—

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी ।

भैरवी छिन्न मस्ता च विद्या धूमावती तथा ॥

बगला सिद्ध विद्या च मातंगी कमलात्मिका ।

एतादृश महा विद्या *सर्व तन्त्रेषु गोपिता ॥

* (सिद्ध विद्या प्रकीर्तिता पाठान्तर)

इनमें से किसी एक की उपासना में दीक्षित होकर ही आराधना की जाती है।

समस्त शाक्त - उपासना का लक्ष्य 'सर्व' खलु, इदं 'ब्रह्म' का ज्ञान ही है।" इसी की सिद्धि हेतु 'दुर्गा-पूजा' महोत्सव क

आयोजन होता है। यही दुर्गा-पूजा, दुर्गा सप्तशती में कही गई है। एनेर्जी पावर कहकर वैज्ञानिक भी इसे मानते हैं, किन्तु कुछ कोल मतावलम्बियों के द्वारा आचारहीन-कृत्य किये जाने के कारण शाक्त लोग समाज में बदनाम भी हुए हैं वस्तुतः यह उनकी अल्पज्ञता अर्थवाद की अनर्थता के कारण हुई है। किस शब्द का कहाँ क्या अर्थ होता है? इस ज्ञान के अभाव में बड़े-बड़े अनर्थ हुए हैं। अतः इससे बचने के लिए अर्थ समझ लेना अनिवार्य है। जैसे देवी बलि से प्रसन्न होती है। लोगों ने इसका अर्थ पशु-बलि ही नहीं, अपितु नर-बलि देने जैसे पाशविक कृत्य करने का अर्थ ले लिया है, जबकि इस 'बलि' शब्द का अर्थ स्वयं देवी जी ने स्पष्ट किया है जो दृष्टव्य ही नहीं; अपितु ध्यातव्य भी है—'काम क्रोधौ द्वौ पशू तावेव बलिमर्पयेत्' अर्थात् काम - क्रोध दोनों पशु है। मनुष्य जब इन दोनों को सर्वथा नष्ट करता है, तभी देवी प्रसन्न होती हैं। कुछ दो - चार शब्दों के उदाहरण प्रस्तुत करना यहाँ प्रासङ्गिक ही नहीं, अपितु अनिवार्य भी है जिससे सुधीजन तो लाभान्वित होंगे ही, सामान्य जन भी अनावश्यक पाप कर्म से वञ्चित होकर धर्म लाभ उठावेंगे।

अब आप 'अजा' शब्द को लीजिए—अजा अविद्या को कहते हैं। मूर्खों ने अविद्या का संहार करने की अपेक्षा बकरों की बलि चढ़ाना प्रारंभ कर दिया। इसी प्रकार—मद्य, मांस, मत्स्य, मैथुन और मुद्रा ये पञ्च मकार बड़े प्रसिद्ध हैं, जिनका अर्थ न समझ कर अज्ञ तथा इन्द्रिय - लोलुप जनों ने बड़ा ही दुरुपयोग किया है। वस्तुतः सन्त योगी जन ही इन गुत्थियों को सुलझा कर मार्ग - दर्शन करते हैं। अतः संक्षेपतः इनका अर्थ भी देखिए—

१. मद्य (मदिरा)—आत्मानन्द की परम अनुभूति में जो (भूमा स्थिति) मस्ती आती है उसी को 'मदिरा' कहते हैं। जैसे भरी है सहस्रार पद्म-रूपी भाजन में, पली है जो चन्द्र की कला

सुधा के स्त्रव से ? कुण्डलिनी जागरण और अमृत रस या सोम पान ही मद्य के लिये प्रयुक्त होता है ।

२. मांस-काम, क्रोध, लोभ मोह आदि पशु वृन्द हनै, धैर्य से विवेक रूपी खड्ग चलाय के' इस अर्थ में मांस शब्द का प्रयोग हुआ है । मांस, उड़द को भी कहते हैं । सूरदास ने अपने कूट पद (हरि-आहार चलिजात) में इसका अर्थ मांस (मास) महीना अर्थात् अवधि के रूप में भी किया है ।

३. मत्स्य-विषय विराग रूपी बागुरा बिछाई दैके, धीवर कृती की प्रतिकृति को अनुसरै । द्वेष-मद, मान, दम्भ, मत्सर पशु-द्वय आदि मोन मति वृद्ध विद्या सहित सेलै धरै । अर्थात् विषय रूपी जल में आसक्त इन्द्रिय रूपी मछलियों को अलग करना है ।

४. मैथुन-

पर पद को पहुँची हैं सूक्ष्म रूप नाड़िका जो,
सुषुम्ना है नाम वाको, सुन्दरी समझिये ।
चन्द्र-सूर्य योग में उसी के साथ संग करि,
सुन्दर सब भूषण ले श्यामा को साजिए ।'

अर्थात् यह दिव्य नाड़ी सुषुम्ना का प्रसंग है । जिसका इडा-पिंगला (सूर्य-चन्द्र) नाड़ियों के साथ समागम है ।

५. मुद्रा-

आशा अरु तृष्णा, भय, घृणा, लज्जा, कोप, जुगुप्सा (घृणा) ये अष्ट भारी कष्ट कारी हैं । वृक्ष रूपी पावक में आठों को पकायदे वै, तांत्रिक क्रिया कलाप के जो अधिकारी हैं ।" भावानुकारिणी आकृति - विकृति ही मुद्रायें हैं । गायत्री - जप के पूर्वापर में भी मुद्रायें की जाती हैं । जिज्ञासु जन इन पाँचों मकारों के अर्थ 'दुर्गा-महिमा' ग्रन्थ में विस्तार से देख सकते हैं ।

“वरिवर्या रहस्य” की टीका में पूज्य चरण स्वामी जी महाराज (दतिया) ने पञ्च मकारों का अर्थ विस्तार से इस प्रकार समझाया है ।

(१) मत्स्य-

गङ्गा यमुनयोर्मध्ये द्वौ मत्स्यौ चरतः सदा ।

तौ मत्स्यौ भक्षयेद् यस्तु स भवेन्मत्स्य साधकः

इडा भागीरथी गङ्गा पिङ्गला यमुना नदी ।

तयोर्मध्यगा नाडी सुषुम्णास्था सरस्वती,

त्रिवेणी संगमो यत्र तीर्थ-राजः स उच्यते ।

क्रमशः इडा, पिङ्गला, सुषुम्णा का मिलन ही गंगा-यमुना-सरस्वती के मिलन का तीर्थराज प्रयाग है । इन दोनों नाड़ियों की साधना ही मत्स्य साधना है, मत्स्य भक्षण नहीं ।

(२) मुद्रा-

सत्सङ्गेन भवेन्मुक्तिरसत्सङ्गेषु बन्धनम् ।

असत्सङ्ग मुद्रणं यस्तु तन्मुद्रा परिकीर्तिता ॥

सत्संग से चिर शान्ति, स्वाधीनता और रसभरा जीवन मिलता है तथा असत्संग से बन्धन । अतः कुसंग का त्याग तथा सत्संग का सेवन ही मुद्रा सेवन है ।

(३) मैथुन-

इडा पिङ्गलयोः प्राणान् सुषुम्नायां प्रवर्तयेत् ।

सुषुम्ना शक्ति रदृष्टा जीवोऽयं तु परः शिवः ॥

तयोस्तु सङ्गमे देवैः सुरतं नाम कीर्तितम् ।

अर्थात् इडा - पिङ्गला नाड़ियों के माध्यम से प्राणों को सुषुम्ना में प्रवर्तन करने वाला प्राणी शिवत्व प्राप्त कर लेता है । इन दोनों के साथ सुषुम्ना के मिलन को देवों ने ‘सुरत’ मैथुन कहा है । इसे सहज ही यूँ भी कह सकते हैं कि दायीं नासिका में (सूर्य) ‘पिंगला’, बायीं नासिका में (चन्द्र) ‘इडा’ है ।

गुरुजनों के सान्निध्य में इन दोनों को सुषुम्ना में संगत करना मैथुन है, दुराचार साधन करना नहीं। इस कथन की पुष्टि निम्न श्लोक से भी होती है।

पर द्रव्येषु योऽन्धः, पर स्त्रीषु नपुंस्कः ।

परापवादे यो भूकः सर्वदा विजितेन्द्रियः ।

उक्त श्लोक में पर द्रव्यों के प्रति उदासीन, दूसरी स्त्रियों के प्रति नपुंस्कत्व तथा पर निन्दा के प्रकरण में मौन धारण करने वाले जितेन्द्रिय पुरुष ही महा - महिम एवं गौरवशाली हैं मत्स्य, मुद्रा, मैथुन, मदिरा, मांसाहारी नहीं।

४. मांस-५. मदिरा-इन दोनों को आप पूर्व वर्णित रूप में ही ग्रहण करें।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो गया कि काम, क्रोधादि की बलि देना तथाकथित पञ्च मकारों का सेवन करना साधना है। इसी से तंत्र-साधना कठिन मानी गई है। जानकार तत्त्वज्ञ महा पुरुषों की सेवा एवं आराधना वेद - भगवान् में भी प्रति - पादित है। उनकी सेवा से ज्ञान की प्राप्ति एवं आनन्द की उपलब्धि होती है। इनकी महिमा देखिए-

कामान् यः कामयते मन्यमानः, सः कामभिर्जायते तत्र तत्र ।

पर्याप्त कामस्य कृतात्मनस्त्वहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः ॥

अर्थात् कामनाओं की पूर्ति हेतु प्रयत्न करने वालों को बार - बार जन्म लेना पड़ता है किन्तु आप्त काम अनपेक्ष भगवद् भक्तों को जीव-मुक्ति का आनन्द यहीं मिल जाता है।

यं यं लोकं मनसा संविभाति,

विशुद्ध सत्त्वः कामयते यांश्चकामान् ।

तं तं लोकं जयते तांश्च,

कामास्तरमादात्मजं ह्यर्चयेद्भूतिकामः ॥

ऐसे महापुरुषों के संकल्प स्वयं सिद्ध होते हैं। जो लोग उनकी सेवा करते हैं, उन्हें भी सब कुछ मिल जाता है।

इस प्रकार सत्सङ्ग से, पञ्च मकार सेवन से सत्त्व गुण की वृद्धि होती है। त्रिगुणमयी प्रकृति से परे परम तत्त्व की उपलब्धि आत्मस्वरूप में होती है। प्रत्येक जीव में ईश्वर ने दिव्य गुण दिये हैं, उन्हें प्रकट करना ही पुरुषार्थ है। शरीर क्षेत्र (खेत) है 'इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते' गीता (१३)। इसमें दोनों प्रवृत्तियाँ हैं—सत्य क्षमादि सात्विकी तथा काम - क्रोधादि तामसी। ये ही कभी धर्मराज - दुर्योधन तो कभी राम - रावण कभी कृष्ण-कंस और कभी महिषासुर, चण्ड-मुण्डादि कह दिये जाते हैं। देवासुर संग्राम अपने भीतर देखना ही साधना है, आसुरी प्रवृत्तियों को जीतना ही पुरुषार्थ है।

सच्चे साधक को सदैव निन्दा से दूर रहना अपेक्षित है। उसे किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिए। विशेषतः उसमें भी 'स्त्रियं न निन्देत' के अनुसार स्त्रियों की तो कदापि निन्दा न करें, क्योंकि नारी तो सभी पराम्बा स्वरूपा ही हैं। तभी 'या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता' कहा है। इसी आचार से माँ के किसी निम्नलिखित रूप का ध्यान करके लक्ष्य-सिद्धि संभव है, क्योंकि यही आचार पुरुषार्थ है।

माँ के ये मुख्य आठ रूप ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, ऐन्द्री, चामुण्डा नामों से उल्लिखित हैं, ये आठ शक्तियों के रूप में प्रसिद्ध हैं। दृष्टान्त के रूप में 'चामुण्डा' को ही ले लीजिए। 'चामुण्डा' आठवीं शक्ति का नाम चामुण्डा है। प्रवृत्ति का अर्थ चण्ड तथा निवृत्ति का अर्थ मुण्ड है। ये दोनों भाई हैं जो काम और क्रोध के रूप में भी माने गये हैं। पाणिनि जी की 'चडि कोपे तथा मुडि खण्डने धातुओं से इसकी निष्पत्ति हुई है।' इसकी संहारक शक्ति का नाम ही चामुण्डा है, जो स्वयं प्रकाशमान हैं। वे किसी आधार को लेकर प्रकाशित नहीं हैं। अतः इनका कोई वाहन भी नहीं बतलाया गया है। इस पराम्बा शक्ति के पाँच कार्य बताये गये हैं।

जगन्माता के पाँच कार्य—(१) तिरोभाव (२) सृष्टि (३) स्थिति (४) अनुग्रह (५) संहार हैं। भगवान् नारायण की सत्व-गुण से प्रकट एवं सदैव विद्यमान रहने वाली शक्ति ही यह पराम्बा है। आइए नारायण ! अब थोड़ा इसके स्वरूप पर विचार करें।

देवी का स्वरूप (बहुवृचोपनिषद्)

प्रज्ञाने ब्रह्मेति वा अहं ब्रह्मास्मि वा भाष्यते। तत्त्वमसीत्येव सम्भाष्यते। अयमात्मा ब्रह्मेति वा अहं ब्रह्मास्मि वा ब्रह्मैवाहमस्मीति वा योऽहमस्मीति। वा सोऽहमस्मीति वा योऽसौ सोऽहमस्मीति वा या भाष्यते।

दुर्गा-सप्तशती के अध्याय ४ मंत्र ६ के अनुसार—

या मुक्ति हेतुरविचिन्त्य महाव्रता त्व-

मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रिय तत्त्व सारैः

मोक्षार्थिभिर्मुनिभिस्त समस्त दोषै-

विद्यासि सा भगवती परमाहि देवि ॥अ. ४।६॥

अर्थात् प्रज्ञान ही ब्रह्म है अथवा मैं ही ब्रह्म हूँ, आदि वाक्य उसी परम तत्त्व को प्रकट करते हैं। वही भगवती सृष्टि से पूर्व थी और उसी ने संसार की रचना की है—‘देवी ह्येकाग्र्या सीत् सैव जगदन्डमसृजत।’ (बहुवृचोपनिषद्) वही आत्म-शक्ति, विश्व मोहिनी, पाश-अंकुश एवं धनुर्वाण धारिणी महा - विद्या है।

शक्ति के अर्थ भी इस प्रकार हैं—शक्तिः, पराक्रमः, प्राणः अथवा कासू सामर्थ्ये शक्तिः, वा शक्लु शक्तौर्ध्वे शक्ति, सामर्थ्य, प्राण, पराक्रम आदि अर्थ में प्रयुक्त होती है।

१. भगवतः शक्तिः—यह षष्ठी तत्पुरुष द्वारा भगवान् की शक्ति सिद्ध करती है। ईश्वर को प्रेरणा देती है।

२. भगवति शक्तिः—इस सप्तमी अर्थ में भगवान् के उपासकों के लिए संकेत करती हैं।

३. भगवती चासौ शक्ति—यह कर्म धारय भगवती के ऐश्वर्यों का संकेत करती है। जैसे कहा है—यत्रास्ति भोगः, नहि तत्र भोगः, यत्रास्ति भोगः नहि तत्र मोक्षः ! श्री सुन्दरी साधन तत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ! अर्थात् जहाँ भोग है वहाँ मोक्ष नहीं और जहाँ मोक्ष है वहाँ भोग नहीं किन्तु माँ के उपासकों के लिए ये दोनों ही सहज सुलभ हैं।

४. भगवान् चासौ शक्तिश्च—इस द्वन्द्वार्थ में भगवती और भगवान् में अभेद सिद्ध होता है।

दुर्गा - सप्तशती

भगवती और भगवान्, शक्ति और शक्तिमान् की अभेदता जान लेने के उपरान्त यह भी पूर्णतः शाश्वत् सत्य है कि इस शक्ति की सत्ता सर्वत्र परिलक्षित हो रही है। यह जगत्प्रपञ्च इसी चिद्विलासिनी की लीला है। अतः जीव-मात्र का इस लीलामयी की कृपा-दृष्टि के लिये लालायित होना नैसर्गिक है। संतों ने दिग्भ्रमित भटकते हुए अनाथ जीव को इस पराम्बा, जगज्जननी जगत्स्वरूपा, परा-शक्ति आत्म स्वरूपा तक पहुँचने के लिए जो अनेक साधन बताये हैं। उनमें 'दुर्गा-सप्तशती' का साधकों के लिए विशेष महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इसलिए, आइए हम यहाँ 'दुर्गा' एवं 'सप्तशती' पर विचार करें।

दुर्गा—वेद, पुराण और उपनिषद् जिसे दुर्गा (जगदम्बा) मानते हैं, सभी के सोने पर जो स्वयं जगती है। जिसकी सहायता से ब्रह्मा, विष्णु, महेश क्रमशः सृष्टि का सृजन, पोषण एवं संहार करते हैं। जिससे तीनों गुण तथा पञ्च महाभूत कार्य करते हैं। जिसकी इच्छा से ही समष्टि व्यष्टि में, कण से लेकर पर्वत तक, चींटी से ब्रह्मा तक व्यवहार हो रहा है। वही यह दुर्ग-विनाशिनी प्राणी मात्र के कष्ट-निवारिणी, संकट-हारिणी माँ 'दुर्गा' है। इनकी ओर कुदृष्टि से देखने वालों के लिए इनका सिंह-वाहिनी

का भयावना रूप है और करुणामयी माँ की दृष्टि वालों के लिए पराम्बा का सौम्य रूप है। इनके कहीं दो, कहीं चार, कहीं आठ तथा कहीं अठारह हाथ हैं जिनमें खड्ग, खप्पर, त्रिशूल, वाण, मूसल, गदा, शङ्ख, चक्र, पद्म आदि आयुध हैं। इन आयुधों के भी विशेष अर्थ हैं।

सप्तशती की गोता से साम्यता

सप्त - सात, शत-सौ, सात सौ की संख्या वाली रचना की संज्ञा 'सप्त-शती' होती है। इस ग्रन्थ के सात सौ श्लोकों द्वारा माँ पराम्बा की उपासना के साथ-साथ उनका चारित्रिक महत्व - लीलाओं का भी प्रतिपादन हुआ है। कतिपय विद्वान् इस ग्रन्थ को आगम ही स्वीकारते हैं; जबकि यह वैदिक परम्परा के अनुसार है। इस पर यहाँ थोड़ा विचार कर लेना युक्ति संगत एवं उपादेय ही है। श्रीमद्भगवद् गीता का नाम प्रस्थान-त्रयी के अन्तर्गत है; दुर्गा - सप्तशती ठीक इसी गीता के अनुसार समरूप उपदेशात्मक एवं कल्याण कारक ग्रन्थ हैं, क्योंकि दोनों के रचयिता महर्षि वेद व्यास जी हैं, दोनों के मंत्रों की संख्या सात सौ हैं। दोनों के श्रोता और वक्ता भी एक ही हैं। अर्जुन का ही नाम सुरथ है और वक्ता, मेधा, बुद्धि, सारथि बासुदेव हैं। दोनों के अवतारों का प्रयोजन भी एक ही है। निम्न श्लोकों पर ध्यान दीजिए—

यदा-यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥गीता १४॥

इत्थं यदा यदा बाधा, दानवोत्था भविष्यति ।

तदा तदावतीर्याऽहं, करिष्याम्यरि संक्षयम् ॥दु. स, १२॥

दोनों की प्रारम्भ में स्थिति भी समान है। जैसे अर्जुन परिवार के प्रति मोहित है, उसी प्रकार सुरथ भी मोह ग्रस्त है। इस प्रकार दोनों की स्थैत्य एवं उपदेशात्मकता की समता तथा

एक रूपता पूर्णतः विद्यमान है। यही नहीं अपितु फलागम की उपलब्धि भी समान है। अर्जुन भी सुरथ की तरह विजयी होकर राजा हुआ। अतः सुधीजन स्वयं इसका निर्णय करें।

दुर्गा-सप्तशती में तीन चरित्र हैं। प्रथम चरित्र से यह शिक्षा मिलती है कि जगत का कोई कार्य अपनी सोयी हुई शक्ति को जगाये बिना कभी नहीं हो सकता। स्वयं कोई कार्य नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त पशु-शक्ति से बुद्धि-शक्ति की श्रेष्ठता भी इस चरित्र में प्रतिपादित हुई है। पशु-बल सम्पन्न मधु-कैटभ बुद्धि-बल युक्त विष्णु का सामना करते रहे; जब अहंकार से उन्मत्त होकर वरदान देने के लिये तैयार हो गये, तब विष्णु ने बुद्धि शक्ति का प्रयोग कर उन्हीं के वध का वर मांग लिया। यही बुद्धि-शक्ति पराम्बा माँ ही है जो कि 'बुद्धिरूपेण संस्थिता ! मूल ग्रन्थ में उक्त है।

एक बात और है कि वैष्णव और शक्ति परस्पर सद्भाव पूर्ण होकर एक दूसरे के दृष्ट का सम्मान करें। विष्णु की ही शक्ति पराम्बा है; और पराम्बा की सहायता से विष्णु जी के समस्त कार्य होते हैं जैसा कि मधु-कैटभ प्रसङ्ग से स्पष्ट है।

द्वितीय चरित्र में 'संघे - शक्ति' की शिक्षा दी गई है। बहुत बड़ा असुर 'महिषासुर' महा-शक्ति के द्वारा शीघ्र मारा जाता है। वह महा-शक्ति सभी देवताओं के मिलने से तथा सभी देवों के अस्त्र-शस्त्रों से युक्त होने पर ही दैत्य-दलन में समर्थ हुई है। परिवार एवं समाज के प्रत्येक व्यक्ति को यह संगठन एवं सहयोग की शिक्षा लेनी चाहिए। मधु-पीने की बात का भी अर्थ उत्साह है। प्रायः जीवन में देखा गया है कि उत्साह के अभाव में बड़े-बड़े परमाणु अस्त्रों के भण्डारण का प्रयोग भी निष्फल ही होता है, किन्तु उत्साह तथा अपनी निजी संगठन शक्ति यदि नहीं है तो केवल अस्त्र-शस्त्र से भी सिद्धि नहीं मिलती। ठीक इसी प्रकार उत्साह एवं साहस तो बहुत है, किन्तु न संगठन है

और न युद्ध के उपकरण, तो भी सिद्धि नहीं मिलती, अतः दोनों ही अनिवार्य हैं ।

तृतीय चरित्र में यह शिक्षा है कि कोई उत्साही, धार्मिक, समाज हितैषी एक ही शक्ति सत्कार्य के लिए आगे बढ़े तो उसे अपने आप शक्तियाँ मिलने लगती हैं । इसके साथ यह भी ध्यान रहना चाहिए कि जब अन्य किसी उपाय से आसुरी शक्ति का दमन न हो तभी युद्ध का प्रयोग करना चाहिए । आपको जो भी दैवी-शक्ति मिले उसका उपयोग संहार के लिए नहीं सुधार के लिए, निर्माण के लिए ही करना चाहिए ।

इन तीनों चरित्रों में इच्छा, ज्ञान-क्रिया का सुन्दर समन्वय है । इच्छाओं का होना स्वाभाविक है, किन्तु सावधानी से सजगता से उस इच्छा को ज्ञान से सम्बन्धित करके ही क्रियान्वित करना चाहिए । बिना विचारे, विवेक का अनादर करके इच्छा-पूर्ति का प्रयत्न महाभारत में दुर्योधन और इस ग्रन्थ में मधु-कैटभ एवं शुंभ-निशुंभ आदि का है । इच्छा-शक्ति महालक्ष्मी, ज्ञान-शक्ति महा सरस्वती और क्रिया शक्ति महा काली है । ये तीनों एक ही हैं । इनकी आराधना से मुक्ति ही सुलभ होती है, किन्तु पञ्च क्लेशों में फँसा जीव कामनाओं के साथ जीवित रहता है । अतः यही पराम्बा ऐसे जनों को भी उनके मनोरथों की पूर्ति करके श्रद्धा जगाकर धर्म में प्रवृत्त करती है । इनका उद्देश्य भौतिकता में फँसाना नहीं, अपितु वैराग्य देकर अशुभ से हटा शुभ में लगाना है । कुछ प्रयोग नीचे दिये जा रहे हैं—

कामना के अनुसार मंत्र से लाल चंदन सहित घृत द्वारा पाँच माला हवन करके उस मंत्र का विधिवत् अनुष्ठान करने से सिद्धि मिलती है ।

१) पत्नी प्राप्ति के लिए—

पत्नीं मनोरमां देहि, मनोवृत्तानुसारिणीम् ।

तारिणीं दुर्ग संसार सागरस्य कुलोद्भवाम् ॥

२) रोग नाश के लिये—

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा,

रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।

त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां,

त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति । ११/२६

३) उत्तम वर प्राप्ति के लिये—

कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि ।

नन्दगोप सुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ॥

श्रीमद्भागवत १०/२२

उक्त मंत्र से लाल चन्दन मिश्रित घृत से पाँच माला प्रथम दिन हवन करके प्रतिदिन २१ इक्कीस माला जपने से निश्चित ही योग्य वर (ईश्वर के समान) मिलता है ।

४) विपत्ति नाश के लिए—

(क) देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते-

नित्यं यथासुर वधादधुनैव सद्यः ।

पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु,

उत्पात पाकजनितांश्च महोपसर्गान् । ११/३४

अथवा

(ख) शरणागत दीनार्त परित्राण परायणे,

सर्वस्यार्ति हरे देवि नारायणि नमोस्तुते । ११/१०

५) भय नाश के लिए—

सर्व स्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्ति समन्विते,

भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोस्तुते ।

अथवा

एतत्ते वदनं सौभ्यं लोचनत्रय भूषितम् ।

पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोस्तुते ।

अध्याय ११/२३-२४

६) बाधा शान्ति हेतु—

सर्वा बाधा विनिर्मुक्तो धन-धान्य सुतान्वितः ।

मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥ १२/१३

अथवा

सर्वा बाधा प्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ।

एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरि विनाशनम् ॥ ११/३६

७) दरिद्रता नाश हेतु—

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः,

स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।

दारिद्र्य दुःख भय हारिणि का त्वदन्या,

सर्वोपकार करणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता ॥ ४/१७

८) मोक्ष प्राप्ति हेतु—

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्त वीर्या,

विश्वस्य बीजं परमासि माया ।

सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्,

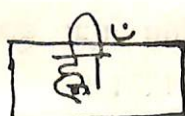
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्ति हेतुः ॥ ११-५ ॥

इसके अतिरिक्त लक्ष्मी-प्राप्ति के अभिलाषी को नित्य-प्रति चतुर्थ अध्याय तथा ज्ञान-प्राप्त्यर्थ ग्यारवें अध्याय का पाठ करना चाहिए ।

कुछ सौंदर्य लहरी के भी सिद्ध प्रयोग दिये जा रहे हैं ।

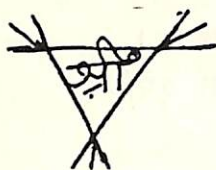
कामना अनुसार यंत्र को स्वर्ण-धातु से बनाकर पूजन करें और उनमें लिखी संख्यानुसार सौंदर्य-लहरी के उस श्लोक का जप करें ।

१-मंत्र ६३ :



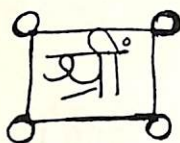
प्रति दिन तीस हजार के जप क्रम से तीस दिन तक करने से वशीकरण होता है ।

२-मंत्र ६० :



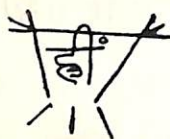
पैंतालीस दिनों तक एक हजार नित्य जपने से 'सर्वज्ञान' होता है ।

३-मंत्र ३२ :



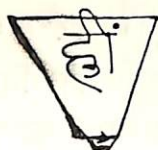
पैंतालीस दिनों तक प्रतिदिन एक हजार जपने से धन वृद्धि होती है ।

४-मंत्र २७ :



पैंतालीस दिनों तक प्रतिदिन एक हजार जपने से ईश्वर दर्शन एवं आत्म ज्ञान होता है ।

५-मंत्र ८८ :



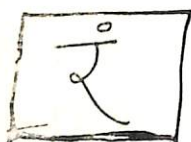
२१ दिन तक छः हजार जपने से सभी रोगों का नाश ।

६-मंत्र ३० :



छियाणवें दिन तक एक हजार नित्य जपने से आधिदैविक शक्ति प्राप्ति ।

७-मंत्र ५२ :



पैंतालीस दिनों तक प्रतिदिन एक हजार जपने से कान तथा नेत्र चिकित्सा ।

८-मंत्र १६ :



पच्चीस दिनों तक प्रतिदिन एक हजार जपने से मोहन ।

९-मंत्र ७६ :



पैंतालीस दिनों तक एक हजार जपने से मोहन ।

शक्ति-सिद्धान्त में शापोद्धार आदि मंत्रों के प्रयोग के बाद दुर्गा-पाठ की प्रसिद्धि है ।

अतः शापोद्धार मंत्र आदि और अन्त में सात-सात बार जप करें । उत्कीलन मंत्र का आदि एवं अन्त में इक्कीस-२ बार जपना चाहिए । मृत सञ्जीवनी मंत्र को भी सात-सात बार जपना चाहिए ।

शापोद्धार मंत्र-ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं क्रां क्रीं चण्डिका देव्यै
शापनाशानुग्रहं कुरु कुरु स्वाहा ।

उत्कीलन मंत्र-ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं सप्तशति चण्डिके
उत्कीलनं कुरु कुरु स्वाहा ।

इसके पश्चात् निम्न मंत्र को सात बार जपने का विधान है ।

मृत सञ्जीवनी-ॐ ह्रीं ह्रीं वं वं ऐं ऐं मृत सञ्जीवनि-
विद्येमृतमुत्थापयोत्थापय क्रीं ह्रीं ह्रीं वं स्वाहा ।

यद्यपि भगवती की कृपा से ही ब्रह्माजी आदि देव कार्य करते हैं फिर उन्हें शाप कौन दे सकता है ? ऐसा जिन्हें विश्वास है उन्हें इन मंत्रों की आवश्यकता नहीं; तथापि कुछ ऐसे विद्वान् भी हैं जो इस विधान को अनिवार्य मानते हैं, उनके लिए तीनों मंत्र दे दिए गए हैं । तत्पश्चात् क्रमशः कवच, अर्गला, कीलक पर विचार करते हैं ।

‘कवच’

पञ्च क्लेशों तथा कामादि प्रबल शत्रुओं से लड़ने से पहले कवच पहिनना आवश्यक है। रावण से युद्ध करते समय श्रीराम ने ‘आदित्य हृदय’ कवच धारण किया था। प्रत्येक अङ्गों की रक्षा पराम्बा के नाम विशेष से की जाती है। माँ के उस नाम के स्वरूप का उस अङ्ग में ध्यान करने से पूर्ण रक्षा होती है। यह कवच स्वयं ब्रह्माजी ने बताया है। इसका पाठ आवश्यक है मात्र बाह्य आयुध रक्षा नहीं करते, रक्षा तो पराम्बा ही करती है। भगवान् का नाम ही रक्षक है।

कवच अभेद विप्र पद पूजा,

यही सम विजय उपाय न दूजा। मानस।

समय आने पर मृत्यु तो सभी की होती है, किन्तु मरने पर भी अमर हो जाने वाले भगवान् के भक्त ही होते हैं; क्योंकि वे लोग भगवान् के नाम का कवच पहनते हैं। अपने-अपने इष्ट-देव का अलग-अलग कवच होता है। साधकों को अपने इष्ट के अनुसार कवच धारण करना चाहिए। दृष्टान्त के लिए निम्न श्लोक उद्धृत हैं—

शंखिनी चक्षुषोर्मध्ये श्रोत्रयोद्धार-वासिनी।

कपोलौ कालिका रक्षेत्कर्णमूले तु शाङ्करी ॥ १३।

नासिकायां सुगन्धा च उत्तरोष्ठे च चर्चिका।

अधरे चामृतकला जिह्वायां च सरस्वती ॥ १४।

इसी प्रकार तत्तदङ्गों में देवोस्वरूप का ध्यान करना चाहिए—

प्रार्थना (शरण पड़े)

उद्धार करो हे मातः ! तिहारो शरण पड़े।

भव पार करो हे मातः। तुम्हारो शरण पड़े ॥

कैसे तेरा नाम रटायें, कैसे तुमसे लगन लगायें।

हृदय जगा दो मैय्या, तुम्हारी शरण पड़े ॥

ऐसी अंतर ज्योति जगाना, हम दीनों को शरण लगाना ।
भटकों को राह दिखाना, मैय्या तेरी शरण पड़े ॥

अर्गला

अर्गला शब्द का अर्थ अवरोध, सांकल या कुण्डा होता है । कपाटों के पीछे एक और लोहे या लकड़ी का मोटा डंडा लगाया जाता है । यदि किसी प्रकार सांकल या कुण्डा खुल भी जाये तो भी वह डंडा (मूसला या अर्गला) कपाटों को दृढ़ता से बन्द रखता है इसी प्रकार जीवन को सुरक्षित रखने के लिए यह अर्गला स्तोत्र है । इसका पाठ करना आवश्यक है । आप जानते हैं कि भक्त भगवान् की कृपा से ही विकार दूर कर पाते हैं । इस अर्गला स्तोत्र के पढ़ने से ऐसा मालूम होता है कि केवल सांसारिकों के लिए ही नहीं अपितु मुमुक्षुओं के लिए भी इसका पाठ अनिवार्य है ।

वस्तुतः जो जिस भावना से भगवती का स्मरण करता है, करुणामयी माँ उसे वही प्रदान करती है । जैसे—“रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि” श्लोकार्द्ध बार-बार आया है । इसके शब्दों के अर्थ भावानुसार ही फलितार्थ होते हैं । ‘रूप’ शब्द को ही लीजिए—रूप्यते, अनेनेतिरूपम्-निरूपणीयम् इस अर्थ में रूप शब्द परमात्मा के लिए हैं । “वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः” गीता से स्पष्ट है कि सभी वेद-शास्त्रों द्वारा प्रतिपाद्य पदार्थ परमात्मा ही है, शारीरिक अंग-रंग-नख-शिख सम्बन्धी रूप अभिप्रेत नहीं । यहाँ माँ से प्रार्थना की गई है कि हे माँ ! मुझे उस परमात्मा का ज्ञान कराओ, जो श्रेय-प्रेय दोनों हैं; किन्तु यह ज्ञान तब तक नहीं होता, जब तक कामादि विकारों पर विजय नहीं मिलती । उपनिषद् में यह घोषणा इस प्रकार की है :—

ना विरतो दुश्चरितान्ना शान्तो ना समाहितः ।

नाशान्त मानसो वापि, प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥

जब तक जीवन से दुश्चरित्र निवृत्त नहीं होते, काम - क्रोधादि विकार दूर नहीं होते, तब तक अशान्त मन से परमात्मा की प्राप्ति हो ही नहीं सकती । इसी से साधक प्रार्थना करता है कि मुझे इन शत्रुओं से विजय दिलाओ, बिना आपकी कृपा के विजय नहीं मिल सकती । श्री रामजी ने भी शक्ति की पूजा की थी । अर्जुन ने महाभारत के पहले दुर्गा की आराधना की थी; अतः विजय प्राप्त करने के लिए 'जयं देहि' कहा गया है । इसके बाद 'यशो देहि' शब्द बहुत स्पष्ट है । जीवन में यदि अच्छे कार्य न हो सके, ऐसे शास्त्र-विरुद्ध आचरणों से तो जीवित ही मर जाना श्रेयस्कर है । भगवान् ने अर्जुन से कहा था कि युद्ध - पलायन से शत्रु तुम्हारी निंदा करेंगे तब तुम कैसे रह पावोगे ? 'कीर्तिर्यस्य स जीवति' का सिद्धान्त है ।

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् ।

संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते । गी/२/३४

जीवन में जितने दिन जीवित हो, उतने ही दिन यशस्वी होकर जीना चाहिए । इसलिए यश की कामना की गई है ।

द्विषो जहि—जिन विकारों को जीतने के बाद ही साधक को साध्य की उपलब्धि होती है । उन विकारों का मारना उतना सरल नहीं है । इसी से माँ से प्रार्थना की गई है कि हे माँ ! आप करुणा करके हमारे भीतर बसे हुए इन शत्रुओं को नष्ट कर दो । तुलसी दास जी ने भी प्रार्थना की है—

मम हृदय प्रभु भवन तोरा, वहाँ बसे आय बहु चोरा ।

ते करहिं उपद्रव नाथा, मर्दीहि मोहि जानि अनाथा ॥

इसी प्रकार संस्कृत के विद्वानों ने शत्रुओं पर विजय पाने के लिए अपने इष्ट देव से प्रार्थनायें की हैं । एक भक्तने काम - वासना से पीड़ित होकर भगवान् शंकर से प्रार्थना की है :-

भवदुपगमशून्ये मन्मनो दुर्ग मध्ये,

निवसति भयहीनः कामवैरिन् ! रिपुस्ते ।

स यदि तव विजयस्तूर्णमागच्छ शम्भो !

नृपतिरधिमृगव्यं किन्नुकान्तारमेति ।

हे शिव जी ! आपका शत्रु काम मेरे मन में है; इसे मार दो । यहाँ भी पराम्बा से शत्रुओं को नष्ट करने की प्रार्थना की गई है । इस अर्गला स्तोत्र में भगवती के विविध नामों को लेकर यही वाक्य बार-बार दोहराते हुए भक्त ने निवेदन किया है । अन्त में 'पत्नीं मनोरमां देहि, मनोवृत्तानुसारिणीम्, 'तारिणीं' दुर्ग संसार सागरस्य कुलोद्भवाम् ।' शास्त्रीय तीनों--(धर्म, काम, अर्थ, दैविक, दैहिक, भौतिक) अर्थों की दृष्टि से लिखा गया है । केवल आधिभौतिक अर्थ करने से सभी के लिए वह शास्त्रों का अर्थ पूर्ण नहीं हो सकता है । जैसे एक संन्यासी के लिए या ब्रह्मचारी के लिए पत्नी मांगना अनुचित है । अतः उनके लिए यहाँ पत्नी शब्द का अर्थ 'ब्रह्माकार वृत्ति या भगवदाकार वृत्ति' है । वास्तव में अविद्या और उसका कार्य संसार रूपी कूप है । उसमें अज्ञान से पड़ा हुआ जीव कैसे पार हो, उसके लिए कुछ आश्रय चाहिए । उस आश्रय का अर्थ यहाँ पत्नी शब्द से कहा गया है । पाणिनिजी ने भी 'पत्युर्नो यज्ञ संयोगे' कह कर यह सिद्ध किया है कि धर्म सहचारिणी बनकर पतन से बचाने वाली पत्नी होती है । साधक जिस कोटि का होता है, उसके अधिकार के अनुसार ही शास्त्र निर्देश करता है । अधिकार भेद से शास्त्रों के अर्थ सर्वत्र आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक क्रम से किये जाते हैं, जिससे उनको संगति लगती है ।

यहाँ "दुर्ग संसार सागरस्य तारिणीम्" कहकर यह बात स्पष्ट की गई है कि मेरी निज ज्ञानानुसार (ब्रह्माकार वृत्ति ही अविद्या का नाश कर सकती है । "कर्तृत्व भोक्तृत्व लक्षणः संसारः" संसार की परिभाषा है कि कर्ता और भोक्ता का गहन वन है जिसमें जीव भटक रहा है । जब तक आत्मा का

कर्तृत्व भोक्तृत्व समाप्त नहीं होगा, तबतक जन्म-मरण से मुक्ति नहीं मिल सकती है । वास्तव में जीव नित्य मुक्त ही है, किन्तु भ्रान्ति वस अपने को कर्ता, भोक्ता, जन्मने, मरने वाला समझकर दुःखी हो रहा है । अतः ब्रह्म-विद्या से प्रार्थना है कि मुझे इस संकट से बचाने के लिये आप की कृपा आवश्यक है ।

अथ कीलकम्

अर्गला स्तोत्र के उपरान्त 'कीलक' का पाठ किया जाता है । कीलक के विषय में तान्त्रिकों के अनेक मत हैं ! सात्त्विक साधकों के लिये अनुपादेय होने के कारण उन प्रसङ्गों को यहाँ नहीं लिया गया है, केवल दुर्गा सप्त-शती के कुछ आध्यात्मिक भाव साधकों के मनन करने के लिये प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

“ददाति प्रतिगृह्णाति, नान्यथैषा प्रसीदति

इत्थं रूपेण कीलेन महादेवेन कीलितम् ॥

इस मंत्र पर विद्वानों ने बहुत विचार किया, किन्तु प्रायः इसका अर्थ सभी प्रकार के लोगों के लिए यही ठीक है जो गोरखपुर गीता प्रेस वालों ने किया है । न्यायोपाजित द्रव्य समर्पित करके उन्हीं का समझ कर प्रार्थना करें—हे माँ ! यह सारा धन आपको समर्पण कर रहा हूँ, इसमें मेरा कुछ नहीं, (मुझको इतना ही क्या कम है ?) । ऐसे कृतज्ञ हृदय के गद्गद भाव से माँ के चरणों में निवेदन करे । पुनः ऐसी भावना करे कि माँ कह रही है—“मैंने स्वीकार किया”—अब तू इसे प्रसाद रूप समझ कर संसार यात्रा के निर्वाह में सदुपयोग कर । इस प्रकार माँ की आज्ञा लेकर, प्रसाद समझ कर धर्म - शास्त्र के अनुसार सदुपयोग करते हुए जीवन यापन करे ।

यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि समर्पण का जीवन में बहुत महत्त्व है । समर्पण के सम्बन्ध में भागवत्कार का मत देखिए :—

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा, बुद्धयाऽत्मना वानुसृतस्वभावात् ।

करोति यत् यत् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत् ॥

भागवत् ११/३/३६

शरीर, वाणी, मन, इन्द्रियाँ, बुद्धि, आत्मा या अपने जाने अनजाने में मनुष्य जो-जो कार्य करे, उसे वह परब्रह्म नारायण को अर्पण कर देने चाहिए । इससे अधिक क्या कृपा होगी भगवान् की; जो जीव के सारे कार्यों की ठेकेदारी स्वयं पर ले रहे हैं । तुलसीदास ने इस समर्पण के भाव को समझकर ही 'तुमहि निवेदित भोजन करहीं,' (मानस) के वाक्य द्वारा साधकों को एक ही साथ श्रेय - प्रेय का अमृत पान कराया ।

शास्त्रीय आचरण ही आचरणीय है, शास्त्र विरुद्ध कभी कोई आचरण नहीं करना चाहिए । आज समाज में 'शाक्त' इस लिए बदनाम है कि पराम्बा जगदम्बा के बहाने मद्य - मांस का सेवन करते हैं, जीवों की बलि चढ़ाते हैं, जो शास्त्र विरुद्ध है । कोई भी देवता शास्त्रीय विरुद्ध आचरण को क्षमा नहीं कर सकता । इसका प्रमाण श्रीमद्भागवत के पाँचवें स्कन्द में वर्णित प्रसङ्ग में दिया गया है — दन्दह्यमानेन वपुषा सहसोच्च - चाट देवी भद्रकाली स्वपार्षदैसहजगौ ननर्त च । ५।६।१७।१६ । जब जड़ भरत की बलि भगवती को दी जाने लगी तो माँ स्वयं प्रकट होकर उस महापुरुष की रक्षा करती हैं । यदि माँ को हिंसा के द्वारा रक्त पान पसन्द होता, तो वे क्यों बचाती ? यह बार-बार दोहराया गया है कि बलि शब्द राजा बलि ने अपना सर्वस्व समर्पण करके यह बलिदान शब्द प्राप्त किया है । अर्थात् परमात्मा के चरणों में सर्वथा समर्पित होना ही बलिदान है अथवा काम - क्रोधादि विकार रूपी पशु-वृत्तियों को नष्ट करना ही वास्तविक बलि देना है । इसको स्पष्ट करने के लिए पञ्च मकार पहले समझाए गए हैं । अतः आप साधकों को तो सदैव अपने इष्ट के समक्ष नत मस्तक होकर समर्पण करना

ही हित कारक है । अतः श्रद्धा पूर्वक समर्पण भाव से निवेदित करते हुए यह गा उठे—

मेरे देवता, मुझको देना सहारा ।

कहीं छूट जाय न दामन तुम्हारा ॥

बिना तेरे मन में समाये न कोई ।

लगन का ये दीप बुझाये न कोई ॥

तुम ही मेरी किशती हो, तुम ही मेरे किनारा,

कहीं छूट जाय न दामन तुम्हारा ॥

तेरे रास्ते से हटाती है दुनियाँ ।

इशारे से मुझको बुलाती है दुनियाँ ॥

मुझे बचा सकता है, केवल तेरा सहारा ।

कहीं छूट न जाय दामन तुम्हारा ॥

तुम्हारा ही गुण गान गाता रहूँ मैं ।

हृदय में तुम्हीं को ध्याता रहूँ मैं ॥

तुम्हारे सिवा अब लगे कुछ न प्यारा ।

कहीं छूट जाय न दामन तुम्हारा ॥

नवार्ण

नवार्ण वर्णन के पहले कुछ बातें समझनी आवश्यक हैं । यह जीव भ्रान्तिवश दुःखी है । अतः आणवी दीक्षा (मंत्र द्वारा) श्री चक्र पूजन, प्राणवी शक्ति-शाम्भवी—इन तीन दीक्षाओं में से कोई एक ग्रहण की जाती है, तभी गुरु कृपा से निम्न पाँच प्रकार के भ्रम दूर होते हैं—

जीवेश्वरौ भिन्न रूपौ इति प्राथमिको भ्रमः ।

आत्मनिष्ठं कर्तृगुणं वास्तवं वा द्वितीयकः ॥

शरीर त्रय संयुक्तो जीवः सङ्गी तृतीयकः ।

जगत्कारण रूपस्य विकारित्वं चतुर्थकः ॥

कारणाद् भिन्न जगत ! सत्य त्वं पञ्चमो भ्रमः ॥

(१) जोव तथा ईश्वर भिन्न है (२) आत्मा में कर्तापिन का आरोप (३) जीव स्थूल सूक्ष्म कारण तीनों शरीर से युक्त है । (४) आत्मा जगत् का कारण होने से विकारी है । (५) जगत् आत्मा से भिन्न सत्य है ।

वस्तुतः ब्रह्म की सत् शक्ति के आधार पर भौतिक सृष्टि की प्रतीति (हो रही) है, चित्त में चेतन जगत् की प्रतीति, आनंद से जगत् में प्रियता की प्रतीति है । इस प्रकार जगत् सत्, चित्, आनंद रूप ही है, भ्रम से अन्य प्रतीत हो रहा है । यही भ्रम - निवृत्ति हेतु साधना की जाती है । साधक का यह शरीर सात मञ्जिल का भवन है—

(१) मूलाधार (२) स्वाधिष्ठान (३) मणिपूर (४) अनाहत (५) विशुद्ध (६) आज्ञा (७) सहस्रार, ये चक्र ही सात मञ्जिलें हैं । इनमें प्रत्येक का चिन्तन किया जाता है । जैसे—

मूलाधार (पैर के अंगूठे से गुदा तक) में पृथ्वी तत्व, पीत वर्ण, चौकोर आकृति, लं बीज, हाथी सवारी, चार दल कमल में वं शं षं सं, लिखा है, लाल रंग है—ब्रह्म-ब्रह्माणी लाल रंग के शिशु रूप में विराजमान हैं, डाकिनी-योगिनी है, स्वयम्भू लिङ्ग साढ़े तीन वालिस्त कुण्डली लिपटी है । इसी का जागरण किया जाता है ।

इसी प्रकार 'स्वाधिष्ठान' में छः दल सिन्दूर रंग के हैं जिनमें वं, भं, मं, यं रं, लं, वर्ण हैं । मणिपूर में दश दल मेघ वर्ण के हैं, ड से फ तक के वर्ण हैं । 'अनाहत' में बारह दल धूम्र वर्ण के हैं उनमें क से ठ तक वर्ण हैं । विशुद्ध में सोलह दल गुलाबी रंग के हैं इसके १६ वर्ण अ से अः तक स्वरों से युक्त हैं । आज्ञा चक्र में दो दल तथा ह, क्ष दो वर्ण अंकित हैं । सहस्रार चक्र में पचास वर्ण बीस आवृत्ति में हैं । इनका विस्तृत वर्णन 'षट्-चक्र-निरूपणम्' में देख सकते हैं ।

ऐं—यह ज्ञान प्रदात्री सरस्वती का बीज मन्त्र है । सरस्वती रहस्योपनिषद् तथा योग शिखोपनिषद् ग्रन्थों में इस मन्त्र के विस्तार, प्रयोग एवं महत्व का अवलोकन किया जा सकता है । वाक्-सिद्धि के प्रयोग शास्त्रों में हैं । सर्व वाक्यात्मका मात्रा वेद शास्त्राणि कृत्स्नशः । पुराणानि च काव्यानि भावाश्च विविधा अपि । सप्त स्वराश्च गाथाश्च सर्वनाद समुद्भवः ।

एषा सरस्वती देवो सर्वभूत गुहाशया ।

य इमां वैखरीं शक्तिं योगी स्वात्मनि पश्यति ।

स वाक् सिद्धिमवाप्नोति सरस्वत्याः प्रसादतः ॥

इस बीज मन्त्र का जापक विद्वान् हो जाता है । एक ही पराशक्ति द्वारा शरीर में सभी क्रियायें सम्पन्न होती हैं । जैसे— (१) क्रियावती—शरीर कम्पादि, नृत्यादि, जगाना, (२) कलावती—३६ छत्तीस तत्त्वों से व्यतिरेक एवं जीव शुद्धि प्रकार, (३) वर्णात्मिका—मन्त्रों द्वारा कुण्डलिनो जगाना, (४) वेधमयी—षट् चक्र वेध द्वारा—इस प्रकार गुरु जनों से पूछ कर प्रक्रिया का ज्ञान होता है । ऋग्वेद १/२२/१६४/४५ देखें—चत्वारि वाक् परिमितानि पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः । गुहा त्रीणि निहितानेङ्गयन्ति । तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति—परा, पश्यन्ति मध्यमा ये तीनों वैखरी में निहित हैं ।

(१) ऐं—वाक् बीज है, वाणी का देवता अग्नि है, सूर्य भी तेज रूप अग्नि ही है सूर्य से ही दृष्टि मिलती है; दृष्टि सत्य की पीठ है, यही सत्य पर ब्रह्म है । वृहदारण्यकोपनिषद् (में) सत् ब्रह्म का प्रतिपादक है । इसी वाग्भव कूट में काम कला और शक्ति-कूट हों युक्त है, यह लक्ष्मी का बीज मन्त्र है, यही मन्त्र राज है । सृष्टि का उदय सोऽकामयत यही आदि-विद्या तथा सृष्टि का उदय-आकाशाद् वायुः आदि हादि विद्या है । दोनों ही इसी शक्ति के खेल हैं । इस प्रकार 'ऐं' का उदय अग्नि है । (मणिपूर) आयतन वाक्शक्ति का विशुद्ध-

चक्र-विकास जिह्वाग्र भाग है। इस बीज के जप से मुख भी विद्वान् हो जाता है।

(२) ह्रीं—यह माया या लक्ष्मी का बीज मंत्र है। इसका उदय आकाश से है। पीठ विशुद्ध में, आयतन सहस्रार में, किन्तु श्रीं का उदय आकाश में होने पर भी आयतन आज्ञाचक्र में है। ह्रीं का सम्बन्ध श्रीं से है। वैसे तो ऐं, ह्रीं, क्लीं तीनों सर्व काम-प्रद बीज हैं। सभी का सभी चक्रों से सम्बन्ध है 'अ+इ=ए, ए+अ=ऐ. अकारो वै सर्वा वाक् सैवा स्पर्शान्तरस्थोऽमाभिव्यज्यमाना बह्वी नाना रूपा भवति (ऐतरेय) अकार विशुद्ध सहस्रार में भी है। इसी अकार से ही सभी वर्ण बने हैं। ॐ में अकार ही मुख्य है।

(३) क्लीं—इस बीज में पृथ्वी तत्त्व की प्रधानता सहित वायु तत्त्व है—क=जल-पीठ मूलाधार आयतन, काम संकल्प जनक होने से स्वाधिष्ठान; अनाहत, तथा आज्ञा चक्र से सम्बन्धित है और वाक्-शक्ति का सम्बन्ध संकल्पों से होता है; अतः क्लीं का सम्बन्ध 'ऐ' से है क्+ल्+ई+नाद-बिन्दु। क्-जल तो प्राण है, सुखार्थक है, प्राण ही वायु है, वायु का कारण आकाश है। प्राण स्वयं ब्रह्म है—कं, खं, प्राण तीनों ही ब्रह्म वाचक हैं। उपनिषद् में प्राणोह्योष.....। प्रयोग है। अन्नमयं हि सौम्य मनः आपोमयः प्राणस्तेजो मयी वाक्-लं से पृथ्वी, पृथ्वी से अन्न, अन्न से मन मूलाधार पृथ्वी है। अतः 'क' जल से प्राण तप 'ल' पृथ्वी से मन एवं प्राण+मन का विकास आज्ञाचक्र है। यही आनन्द का स्थान है। 'आनन्दो ब्रह्मेतिव्यजानात्' प्राण का निवास हृदय है। प्राण ही परमात्मा है, परमात्मा ही प्रेम-स्वरूप है 'हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति' 'सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टः से सिद्ध ही है। आदित्यो वै प्राणाः वचन है। इन प्रमाणों से सिद्ध है कि तीनों बीज परमात्मा वाचक हैं। चामुण्डा शब्द का अर्थ पहले हो चुका है। स्वयं प्रकाश चित् तत्त्व स्वरूपिणी पराम्बा

है और 'विच्चे' का अर्थ समर्पण या नमस्कार है; अर्थात् ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती तथा सम्पूर्ण संकल्पों की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी और सम्पूर्ण कर्मों की स्वामिनी महाकाली स्वरूप में सञ्चिदानन्द रूप ही हैं। उनके इस अभिन्नरूप को नमस्कार है; नमस्कार का अर्थ समर्पण है; व्याकरण में सम्प्रदान चतुर्थी का यही अर्थ है। इसी से नमः के योग में चतुर्थी होती है आप ये भी जान चुके हैं कि ये तीनों बीज परमात्मा के वाचक हैं। सभी आकृतियाँ सत् तत्व में (काली रूप) सभी प्रतीतियाँ चित् तत्व में (महालक्ष्मी) सभी प्रीतियाँ आनन्द तत्व (महा सरस्वती) में ही विवर्त हैं।



‘रात्रि-सूक्त’

नवार्ण मंत्र के जप के पश्चात् ‘रात्रि-सूक्त’ स्तोत्र के पाठ का क्रम है। इसी स्तोत्र के द्वारा ब्रह्माजी ने भगवान् को योग निद्रा से जगाया था। यह जीव न जाने कब से मोह की रात्रि में सोया हुआ है। उसका जागरण दैवी आराधना से ही सम्भव है। रात्रि-सूक्त में पराम्बा की की गई स्तुति अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। अन्त में बहुत ही स्पष्ट कहा गया है कि तुम ही इस जगत् की मूल शक्ति हो—

परा पराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ।

यच्च किञ्चद् क्वचिद् वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ।

तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा ॥ रा०सू० १०-११

हे जगदम्बे ! परा एवं अपरा प्रकृति तुम ही हो, जो कुछ भी स्थूल सूक्ष्म रूप से इन्द्रियगोचर है, तथा प्रकृति से परे तत्त्व है; वह सब तुम ही हो। स्पष्टतः ‘सर्वं खल्विदं ब्रह्म’ की यही घोषणा है। हमारे पुराणों की यही रीति है कि जो प्रतिपाद्य तत्त्व परमात्मा है उसी को लक्ष्य रूप से दिखाया जाता है। चाहे वह नारद-पुराण में नारद, विष्णु-पुराण में विष्णु तथा देवी-भागवत में देवी को कहा जाय, सबका तत्त्व एक ही है। वही ब्रह्म है, परमात्मा है, परा शक्ति है—यया ततमिदं सर्वम् को गीता में ‘येन सर्वमिदम् ततम्’ कहा है ‘मेरी ओर निहार’ गीत में इसी परमात्मा, परा शक्ति, परम तत्त्व की करुणामयी उपासना करके द्रवित किया गया है। गीत की मुख्य पंक्तियाँ उद्धृत हैं—

करुणामय प्रतिपाल प्रभो, करुणा दृष्टि निहार ।

जीवन ज्योति प्रकाशक, प्रियतम मेरी ओर निहार ॥

साधन साध्य उपाय उपेय तुम मेरे हो आधार ।

अबकी बार उबार दयानिधि आयो तेरे द्वार ॥

सब तुममें तुममें सब देखूँ चिद् विलास संसार,

आत्म ब्रह्म की लखूँ एकता अनुभव का दीदार,

अबकी बार उबार दयानिधि, मेरी ओर निहार ॥

भक्ति संगीत सौरभ पृ० १०

अथ प्रथमोऽध्यायः

दुर्गा-सप्तशती के माध्यम से आप श्रवण कर रहे हैं कि जीव राग, द्वेष, स्मिता, अभिनिवेश तथा अविद्या इन पञ्च क्लेशों से बंधा हुआ है। अपने स्वरूप को पहिचाने बिना जीव इन पाँचों के बन्धन से छूट नहीं सकता तथा दुःखों से भी निवृत्ति नहीं हो सकती। प्रेमियो ! मानव-योनि ही एक ऐसा जीवन है जिसमें जीव अपने स्वरूप को जानकर जन्म-मरण के चक्र से उन्मुक्त हो सकता है। दूसरी योनियों में यह सामर्थ्य नहीं। आप सब बड़े भाग्यशाली हैं जो भगवती गंगा मैथ्या के तट पर माँ पराम्बा भगवती दुर्गा-सप्तशती के माध्यम से राम के दास सम बाबा रामदास के आश्रम में अपने जीवन दर्शन का श्रवण कर रहे हैं। दुर्गा-सप्तशती में तान चरित्रों का वर्णन है। हमारे जीवन में भी प्रतिक्षण तीन चरित होते रहते हैं। पहले मन में इच्छा उदय होती है, तत्पश्चात् उस इच्छा का ज्ञान होता है और तब उचित इच्छा की पूर्ति के लिए प्रयत्न होता है। अवस्थाएँ भी शैशव, यौवन, वृद्ध तीनों ही हैं। जीवन की पहली अवस्था बचपन है। माँ के पेट से आया शिशु सबको प्रिय होता है, क्योंकि उसके रोम-रोम में निश्छल पावन प्रेम झलकता है उसे न किसी के प्रति राग होता है न द्वेष ही। जैसे ही वह धीरे-धीरे बड़ा होता है, उसकी आँखों कानों के द्वारा संसार प्रविष्ट होता जाता है। उसमें 'मेरा-तेरा' का प्रवेश होते ही किसी के प्रति राग तो किसी के प्रति द्वेष प्रारम्भ हो जाता है। क्रियाएँ भी तत्तत् रूप होने लगती हैं। यही जीवन की पहली अवस्था है।

दूसरी अवस्था यौवन (जवानो) की है जिसमें विविध प्रबल इच्छाओं का जन्म होता है। युवक बैठे हो बैठे मनो-राज्यों द्वारा आकाशा महल बनाते रहते हैं। उनका विचार उन्हीं को झकझोरते रहते हैं। ऐसी अवस्था में यदि किसी

युवक ने न्यूनाधिक वोल्टेज को नियन्त्रित करने वाले यन्त्र की तरह सत्संग के स्टेपलाइजर का सेवन किया, आराधना में मन लगाया, तभी वह सन्तुलित रह सकता है, अन्यथा उसे अपना जीवन भार बन जाता है; क्योंकि अहंकार की मात्रा उसमें बढ़ जाती है, जो उसे किसी काम का नहीं रहने देता ।

जीवन की तीसरी अवस्था बुढ़ापा है । वृद्धावस्था में रक्त-बीज की तरह शरीर बूढ़ा होने पर विषय-अभिलाषायें निरन्तर बढ़ती जाती हैं, माँ की आराधना के प्रयत्न से कैसे इनका दमन होता है ? यह आप आगे कथा में श्रवण करेंगे ।

अब प्रथम चरित्र के विनियोग से क्या शिक्षा मिलती है, यह सुनिए—

विनियोग :-ॐ प्रथम चरित्रस्य ब्रह्मा ऋषि, महा काली देवता, गायत्री छन्दः, नन्दा शक्तिः रक्त-दन्तिका बीजम्, अग्नि-स्तत्त्वम्, ऋग्वेदः स्वरूपम्, श्री महाकाली प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

इसके ऋषि स्वयं ब्रह्मा जी हैं; जो वेदों से मंत्र निकालकर जनता-जनार्दन को देते हैं । ब्रह्मा जी सृष्टि के रचयिता हैं, रचना करने के लिए दो चीजें आवश्यक हैं—एक विवेक और दूसरे कला-शिल्प (कारीगरी) नैपुण्य । उनके इसी विवेक का प्रतीक हंस है, जिस पर वे सवार होते हैं । हंस दूध और पानी को विलग कर देता है । अतः आप समझ लीजिये कि सत्य-असत्य का विवेक करने वाला ही तो सृष्टि बना सकता है ।

दूसरी आवश्यक वस्तु कला और शिल्प-नैपुण्य (कारीगरी) है । यदि कुम्हार घड़ा बनाने की कला से अनभिज्ञ है तो वह मिट्टी, चक्र तथा सूत निमित्त तथा उपादान दोनों कारणों के विद्यमान होने पर भी घट निर्माण नहीं कर सकता । प्रथम चरित्र में ब्रह्माजी का नाम लेकर हमें यह शिक्षा दी गई है कि प्रत्येक कर्म करने के पहले तत्सम्बन्धी विवेक, करने की विधि एवं कला में नैपुण्य प्राप्त कर लें, तभी उस कार्य में सफलता मिलती है । यही क्रिया का मूल सृजन करने वाले ब्रह्मा ऋषि

का प्रयोजन है। एक बात और ध्यान देने की है, जिससे कुछ लिया जाये, उसके प्रति कृतज्ञता अवश्य व्यक्त करनी चाहिए। आजकल तो कृतज्ञता-ज्ञापन का अभाव होता जा रहा है। जिन गुरुजनों से कुछ भी मिला है, उनके प्रति कृतज्ञता अर्पित करना तो सामान्य धर्म-मात्र है, सर्वस्व समर्पण ही परम धर्म है। मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव। श्रुति भगवती के ये वचन उक्त कथन का ज्वलन्त प्रमाण है। अपने गुरुजनों के दोषों को छिपाने वाला ही तो छात्र है। 'वातस्तप वर्षाभ्यः त्रायते इति छत्रम्, तथा छत्र शीलमस्य' इस विग्रह में छत्रादिभ्योऽणः' सूच से छात्र शब्द निष्पन्न होता है। तथ्य यह है कि जैसे छाता सर्दी, गर्मी तथा वर्षा से रक्षा करता है ऐसे ही छात्रों को गुरुजनों की सेवा करनी चाहिए। ग्राह्य सारमपास्य फल्गु के सिद्धान्तानुसार उनके दोषों को ढाँकना और गुणों को ग्रहण करना चाहिए। इस कल्याण कारिणी परम्परा को चिर-अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए मैं हृदय से ब्रह्मा जी तथा माँ काली को कृतज्ञता अर्पित करता हूँ। ये दोनों इस अध्याय में प्रमुख हैं। इसमें 'गायत्री छन्द से भी शिक्षा मिलती है, कि सद्बुद्धि मिले 'धियो यो नः प्रचोदयात्' सभी मंत्रों में गायत्री की श्रेष्ठता इसी इसी कारण है कि इसमें सद्बुद्धि मांगी गई है। कितनी भी अच्छी कार, सुन्दर प्रशस्त राज पथ हो, किन्तु ड्राईवर बोटल पीकर बैठा हो तो क्या परिणाम होगा, आप सोचें। अतः चालक - सारथि रूपी बुद्धि का अच्छा होना सर्वोपरि है।

गीता में स्पष्ट है :—

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते ।

तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥ गीता २/६७

यदि इन्द्रियों के अनुसार मन चलेगा तो बुद्धि डगमगा जायेगी अतः भगवान् श्रीकृष्ण भी बुद्धि की शरण में जाने की प्रेरणा देते हैं और स्थिर प्रज्ञ होने की दीक्षा देते हैं।

आजकल रजोगुणी और तमोगुणी आहार, विहार, व्यवहार, विचार होने के कारण बुद्धि दूषित हो जाती है। अतः सावधान रहना चाहिए। दोषों में बहुत सामञ्जस्य होता है। जल की भाँति मन की गति भी निम्न-गामिनी होती है। एक बुराई आते ही और भी बुराईयाँ आने लगती हैं। अतः हमें सदैव सद्बुद्धि के लिए प्रयत्न करते रहना चाहिए।

पाठ में आगे नन्दा शक्ति का प्रयोग है। इससे हमें सदा प्रसन्न रहने की शिक्षा मिलती है। शरीर प्रारब्ध से बना है, अतः शुभ और अशुभ कर्मों का फल अवश्य मिलेगा। शुभा-शुभाभ्यां मार्गाभ्यां वहन्ती वासना सरित्। पौरुष प्रयत्नेन योजयेत सदा शुभे। शास्त्रों का यह सन्देश हमें जगा रहा है हमारे पुरुषार्थ को ललकार कह रहा है कि शुभ की ओर ही अग्रसर रहो; तभी श्रम की सार्थकता है।

आप स्वयं जैसे शुभ और अशुभ के साक्षी हो, वैसे ही सुख - दुःख के साक्षी हो। सुखी और दुःखी करने वाली जो भी सम-विषम परिस्थितियाँ उपस्थित हों, उनमें आपको अपनी मनःस्थिति सम रखनी चाहिए और प्रत्येक स्थिति को भगवान् का मंगलमय विधान समझना चाहिए।

भागवत में कहा है—

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृत विपाकम्।

हृद्वाग्वर्षुर्भविदधन्नमस्ते जीवेत यो भुक्ति पदे स दाय भाक् ॥

भाग-१०/१४/८

भाव यह है कि अपने प्रारब्धानुसार मिली कठिनाइयों या प्रतिकूल परिस्थितियों को बड़ी प्रसन्नता के साथ भोग लें और प्रतिपल प्रियतम प्रभु की कृपा का अनुभव करें। जो प्रेम से हृदय, वाणी और शरीर द्वारा भगवान् का भजन करता है वह जीवन मुक्त है।

भक्त के जीवन में यह निश्चय होना आवश्यक है कि सभी वस्तुयें भगवान् की हैं। मुझे सदुपयोग करने के लिए मिली है।

इस निश्चय से शोक और भय दोनों नहीं होंगे । दुःख, दर्द, शोक और भय तभी होते हैं जब किसी वस्तु और व्यक्ति के साथ ममत्व जुड़ता है, 'अपना' मानते हैं । वस्तु और व्यक्ति दोनों का वियोग होना निश्चित ही है अतः दुःख होना भी निश्चित एवं अवश्यम्भावी है । भूतकाल का शोक और भविष्य का भय होता है । उदाहरण के लिए एक घटना प्रस्तुत है ।

एक सज्जन ने अपना एक मकान बेच दिया । अगले दिन उसमें आग लग गई । सूचना मिलने पर दुःख होना तो दूर, प्रसन्न होकर बोले, अच्छा हुआ जो कल बेच दिया था । इतने में उसके पुत्र ने आकर कहा—उस मकान में अभी मेरा सामान रखा हुआ है । बस फिर क्या था ? महाशय तुरन्त व्याकुल हो आग बुझाने के लिए दौड़ पड़े । उधर दूसरे बेटे ने आकर कहा—पिता जी घबराइए नहीं, अपना सामान मैं सब ले आया हूँ । यह सुनकर भद्र पुरुष शान्त हो गये । मकान जलता रहा, देखते रहने पर भी लेश-मात्र चिन्ता एवं दुःख न था ।

इसका तात्पर्य यह है कि जीव की (अपनी) सृष्टि ही दुःख देती है । अतः यहाँ नन्दा शक्ति का नाम लेकर यहाँ यह बताया गया है कि भगवान् में समर्पित होकर शोक-मोह से रहित हो सकते हो ।

रक्त-दन्तिका बीज है । वैप्रचित्त दैत्यों को संहारिणी-इस शक्ति का नाम है । इनका नाम लेकर स्मरण दिलाया है कि मेरे भी आसुरी भावों को नष्ट करो । रक्त-दन्तिका पीठ सैदनगर (जालौन उत्तर प्रदेश) में है ।

अग्नि-तत्त्व है । अग्नि में जलाने और प्रकाशित करने के दो गुण हैं । पापों को जलाना और दिव्य गुणों को प्रकाश में लाना दोनों ही जीवन में अनिवार्य हैं ।

(क) ऋग्वेद स्वरूप है । वेद किमो पुस्तक का नाम नहीं है । वेद शब्द का अर्थ ज्ञान है । हमें अपनी देह से हो यह ज्ञान

मिलता है कि पहले ज्ञानेन्द्रियाँ कार्य करती हैं इसके पश्चात् कर्मेन्द्रियाँ कार्यरत होती हैं। जैसे पहले आँख देखती है, नाक सूँघती है तब उस पदार्थ को हाथों के द्वारा मुख में प्रवेश की स्वीकृति मिलती है।

(ख) कान दिये दो ईश ने, जिह्वा दीनी एक ।

कहने से सुनना अधिक, सीखो प्रकृति विवेक ॥

(ग) किसी पके फल को आँखें देखती हैं, पैर दौड़ते हैं, हाथ तोड़कर मुख को देते हैं, दाँत परिश्रम कर जिह्वा को स्वाद देते हैं तब पेट में पहुँच रस-रक्त आदि बनकर शरीर का पोषण करता है। यही ग्रहण कर त्यागने की और दूसरों को देने की शिक्षा वेद से मिलती है—

ईशावास्यमिदं सर्वं, यत्किञ्चित् जगत्थांजगत् ।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा, मा गृधः कस्यचिद्धनम् ॥

इस प्रकार विनियोग द्वारा ब्रह्मादि का स्मरण करके कृतज्ञता अर्पित की गई है। प्रतिपादित की गई शिक्षाओं को धारण करना कर्त्तव्य है। यही विनियोग का तात्पर्य है।

‘ध्यानम्’

खड्गं चक्र गदेषु चाप परिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः

शंखं संदधती करैस्त्रिनेयनां सर्वाङ्गभूषावृताम् ।

नीलाश्मद्युतिमास्यपाद दशकां सेवे महाकालिकां,

यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधु कैटभम् ॥

शेषशायी भगवान् सोये हुये थे; उनके कर्ण-मल से उत्पन्न हुये मधु और कैटभ दोनों ही ब्रह्मा जी को खाने के लिये दौड़े। तब ब्रह्माजी ने जिस स्वरूप की स्तुति करके अभय प्राप्त किया था; उन्हीं पराम्बा काली का स्तुवन करता हूँ। वे अपने दस हाथों में तलवार, चक्र, गदा, बाण, धनुष, परिघ, शूल, बन्दूक, मस्तक तथा शङ्ख धारण किए हुए हैं। दस मुख और दस पैर हैं। यह परा प्रकृति दसों दिशाओं में व्याप्त है। परमात्मा के

सत् तत्व में ही कर्म-लीला होती है। पैर गति तथा हाथ कर्म वाचक है। जहाँ जो कुछ, जैसे भी हो रहा है, होगा और हुआ, सब कुछ करुणामयी माँ ही हैं। ये भाव धारण करना चाहिए। इसी माँ को नमन कर प्रारंभ करते हैं। इसमें तीन प्रकरण हैं—

(१) मधु-कैटभ (राग-द्वेष) जन्म (२) ब्रह्मा जी को अभय प्राप्ति (३) दैत्य-संहार।

मार्कण्डेय ऋषि कहते हैं—कथा माध्यम से जीव मात्र का परिचय सुनिए—

सार्वणि सूर्यस्तनयो यो मनुः कथ्यते ऽष्टमः.....।

स्वरोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्र वंशं समुद्भवः।

सुरथो नाम राजाभूत् समस्ते क्षिति मण्डले।

आठवें मनु सूर्य के पुत्र सार्वणि की उत्पत्ति कथा विस्तार से कहता हूँ। सूर्य कुमार महाभाग सार्वणि भगवती महामाया के अनुग्रह से जिस प्रकार मन्वन्तर के स्वामी बने वही प्रसङ्ग सुनाता हूँ। पूर्वकाल में स्वरोचिष मन्वन्तर में चैत्र वंश में सुरथ नाम का राजा उत्पन्न हुआ, जिसका समस्त भूमण्डल पर अधिकार था।

आठों सिद्धियों से युक्त स्वरोचिष मन्वन्तर में दसों दिशाओं का स्वामी सुरथ नाम का राजा प्रत्येक जीव ही तो है, जरा इसे यूँ समझना चाहिए—

(१) सूर्य पुत्र कहने का तात्पर्य है कभी न थके, कभी न रुके, निरन्तर गतिशील, परम प्रकाशमय स्वरूप, निष्पक्ष कर्म-शील सूर्य है। देखो वेद में भगवान् कहते हैं—सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरंश्चरैवेति। ऐतरेय ब्राह्मण ३३, ३.५ सूर्य की विशेषता - निरन्तर परिश्रम - आगे बढ़ते रहना। अतः तुम भी जीवन में आगे बढ़ो, बढ़ते चलो, यही आपको शिक्षा लेनी है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्। गीता ४/१

कर्मयोग सर्व प्रथम सूर्य को दिया गया था । सूर्य के साम्राज्य में अज्ञानान्धकार के प्रवेश का प्रश्न ही नहीं । दूसरे सूर्य देता ही रहता है, लेता कुछ नहीं और यदि लेता भी है तो सहस्रों गुणा करके ही देता है । अतः जीव को भी समाज से लेना कम और देना अधिक की सीख लेनी चाहिए ।

(२) आठों सिद्धियों से युक्त है । सचमुच जीव-मात्र अष्टधा प्रकृति एवं चैतन्य शक्तियों से सम्पन्न जैसे ईश्वर हैं वैसे ही जीव भी है, उसमें सर्व शक्तियाँ हैं—स्वाधीन (स्वरोचिष) है; भ्रम से पराधीन समझ रहा है ।

सुरथ—सुष्ठु रथो यस्येति सुरथः—सुन्दर रथ का संकेत मनुष्य योनि है । ‘शरीरं रथमेव’ समस्त योनियों में मनुष्य योनि ही सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि जीवात्मा सर्व सिद्धियों से युक्त तथा आत्म कल्याण हेतु मनन करने में समर्थ है ।

मनु—(मननात्) पुराणों में मनु-शतरूपा से मनुष्य उत्पत्ति का भी यही तात्पर्य है कि मनन (मनु) श्रद्धा के योग से ही मनुष्य है; जिसके जीवन में मनन और श्रद्धा नहीं है वह मनुष्य वेश में भी मानव नहीं है ।

न्याय दर्शन में तो ‘मनुष्यत्वाच्छेदकावच्छिन्नो मनुष्य’ मानव धर्मयुक्त ही मनुष्य कहलाता है ।

चैत्रवंश—उज्ज्वल वंश है । अतः यह जीव भी उज्ज्वल वंश का है समस्त भूमण्डल का राजा है, भगवान् का अंश है ।

ममैवांशोजीवलोके जीव भूतः सनातनः ॥ गीता १५/७ ॥

राजतेऽसौ राजा—अपनी इन्द्रियों के स्वामी होने पर ही राजा होता है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो रहा है कि मानव अनेक ईश्वरीय शक्तियों से सम्पन्न विशिष्ट भगवत्-कृपा पात्र जीव है । संक्षेपतः उन विशेषताओं का पुनः एक बार सिंहावलोकन कर लेना युक्ति संगत है ।

- (१) सूर्य-पुत्र (ज्ञान, कर्म, उपासना में पूर्ण समर्थ)
 (२) मनन-श्रद्धा सम्पन्न (३) समस्त सिद्धियों से युक्त
 (४) परमात्मा का वंशज (५) सुरथ-समस्त योनियों में श्रेष्ठ
 शरीर (६) परम स्वाधीन इन्द्रियों का प्रकाशक (७) राजा—
 मन, बुद्धि, इन्द्रियों का शासक (८) पाप-पुण्य पैदा करने
 वाला ।

आठ विशेषण सम्पन्न होने पर भी यह अपने को कैसे दुःखी और कंगाल समझ लेता है—यही मोह लीला का खेल है । जिस पराम्बा की कृपा से 'महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः' सर्वश्रेष्ठ राजा होता है । उस कृपा का अनुभव न करके कंगाल बन जाता है । कहा है—कबहुँक कर करुणा नर देही, देत ईश विन हेतु सनेही (मानस)

महामाया प्रभावेण संसार स्थिति कारिणा ।

तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः ॥ प्रथम ॥५४
 आश्चर्य मत करो, यदि कोई राजकुमार अपने को भिखारी के साथ रहने से भिखारी दास समझ कर दर-दर मांगता घूमे, तो इसमें पराम्बा का क्या दोष ?

'क्षिति मण्डले'—क्षिति मण्डल का संकेत मूलाधार से है । अर्थात् पैर के अंगूठे से सिर तक सभी का राजा है - प्रजा पालन में तत्पर है । प्रजा शब्द से विद्वानों ने भावों को भी ग्रहण किया है 'प्रकृष्ट रूपेण जायते' इस अर्थ में अपने बनाये मनो राज्यों का पालन करता है । और यह भी अर्थ है कि व्यवहार में जो परिवार-समाज मिला है । उसके प्रति स्नेह-प्रेम, सद्भाव पूर्ण कर्तव्य का निर्वाह कर रहा है । संसार रंगमंच पर प्रत्येक सुरथ ही सूत्रधार के इशारे से अपना-अपना अभिनय कर रहा है । कौन किस रूप में निर्वाह कर पाता है यह तो वही जाने । व्यवहार में परस्पर सद्भाव प्रेम और सौहार्द आवश्यक है किन्तु यह पूर्ण निश्चय रहे कि यह रङ्गमंच है । वास्तविक सम्बन्ध पात्रों

से नहीं है। राधा-कृष्ण बनने वाले दोनों बालकों का मञ्च के बाहर कोई सम्बन्ध नहीं है। यही निश्चय न होने के कारण जीव मोह ग्रस्त होकर दुःखी होता है।

यही दशा अर्जुन की है—श्वेतैर्हयैर्युक्ते, सेनयोस्त्रभयोर्मध्ये, पूजार्हावरिसूदन; श्यालः सम्बन्धिनस्तथा। यही बात संसारी जीव की है। इस कथा को मनन करते चलो, अपने को सुरथ समझो, तब विचार करने में सुविधा रहेगी। प्रवृत्तियों-निवृत्तियों के बीच में आत्म निरीक्षण करने से विदित हुआ कि सामने खड़े वीर तो साथी हैं, रिश्तेदार हैं, क्योंकि मैंने ही इन्हें अन्तःकरण में पैदा किया है। समाज या परिवार से स्नेह सौहार्द रखना तो धर्म है, कर्तव्य है, किन्तु सत्य समझना तथा ममता ग्रस्त होना ही पराजय का लक्षण है।

शत्रु दो प्रकार के होते हैं (१) बाह्य (बाहरी) (२) आन्तरिक (भीतरी) दोनों ही लुटेरे हैं। सावधानी न रहने पर ही आक्रमण कर देते हैं। 'श्रीमद् भागवत' में अनेक दृष्टान्त हैं—राजा भरत तप करने गये, मृग-शावक में आसक्त हो गये। यह प्रबल शत्रु मोह है—'मोह सकल व्याधिन कर मूला'। राजा पुरञ्जन अपनी पत्नी में आसक्त होने के कारण पुनर्जन्म में स्त्री वेश में आये।

यहाँ इस प्रसङ्ग में भी यही घटना है—संख्या और बल में कम होते हुए भी कोलाविध्वंशी शत्रुओं से प्रबल शक्तिशाली सेना सम्पन्न राजा सुरथ परास्त हो गया। यह यथार्थ है कि बाहर से आने वाले लोभ मोहादि शत्रु सहज नहीं हैं; किन्तु जीवात्मा राजा को तो परास्त कर ही देते हैं चक्रवर्ती सम्राट्, महाराज दशरथ कैकेयी के पैरों पर गिरे हैं। त्रिभुवन विजयी रावण सो दस शीश श्वान की नाँई। कुत्ते की तरह बन जाता है। विश्वामित्र जैसे तपस्वी को काम ने ऐसा पटका कि वर्षों बीत गये मेनका के साथ।

इन दृष्टान्तों से यहाँ यह सीखना है कि इन विकारों को कमजोर न समझो और असावधान न रहो । अपने मन का भरोसा न करो, पूजा अनुष्ठान का अभिमान न करो । सदा भगवान् की शरण में रहो; विनीत भाव से प्रार्थना करते रहो-‘हे दयामयी माँ ! करुणापूर्ति नयना, सदार्द्रचित्ता पराम्बा ! मैं अवोध शिशु की तरह आपकी गोदी में हूँ’ कृपा करके सद्बुद्धि दो । इसी से शाक्त साधक देवी सूक्त के पाठ का बहुत महत्व मानते हैं ।

सारा ब्रह्माण्ड प्रकृति माँ की गोद ही तो है । इसका अनुभव करने वाला साधक आये हुए अहंकार, काम क्रोधादि शत्रुओं से परास्त नहीं होता, किन्तु यह बेचारा सुरथ परास्त हो गया । रामायण में मेघनाद ने अमोघ शक्ति के द्वारा श्री लक्ष्मण जी को बेहीश कर दिया था क्योंकि उस समय श्री लक्ष्मण जी के साथ न श्री रामजी थे और न संत प्रवर श्री हनुमान जी । श्री रामजी ज्ञान स्वरूप हैं और हनुमानजी सद्गुरु स्वरूप । दोनों के अभाव से विवेक रूप लक्ष्मण प्रबल होने पर भी काम रूप मेघनाद से पराजित हो गये थे जब वे ही लक्ष्मण जी श्रीरामजी तथा श्री हनुमानजी के साथ होते हैं; अथवा उनका आश्रय पा लेते हैं तो सदा के लिये कामरूप मेघनाद को मार डालते हैं । ठीक इसी प्रकार प्रत्येक साधक को सावधान रहना चाहिये और उन शत्रुओं को कमजोर नहीं समझना चाहिये ।

कोला विध्वंशी राजाओं से परास्त होकर भी सुरथ चैन से न रह सका; क्योंकि उसके अन्तरंग साथी मन्त्रियों ने ही उसका सम्पूर्ण कोष हर लिया । इसका अर्थ यह कि वाह्य की अपेक्षा अन्तरंग शत्रु अधिक भयंकर एवं घातक होते हैं क्योंकि उनके प्रति हम उतने सजग नहीं होते । रावण और पृथ्वीराज की पराजय का कारण अपने ही विभीषण तथा जयचंद रहे । अतः अत्यन्त सावधानी एवं सजगता की आवश्यकता है ।

“अभात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः ।

कोशोवलं चापहतं तत्रापि स्वपुरे ततः ॥”

इस मन्त्र से यही शिक्षा ग्रहण करनी है कि व्यवहार में अन्तरंग दुष्टात्माओं से किसी भी प्रकार शत्रुता का भाव प्रकट न होने दे। सुरथ के कोष लुटने का यही भाव है कि शारीरिक और मानसिक सामर्थ्य समाप्त हो गई। मानव-शरीर में पांच कोष होते हैं :- (१) अन्नमय कोष-(स्थूल शरीर) (२) प्राणमय कोष-जिस शक्ति या एनर्जी से क्रियायें सम्पादित होती हैं (३) मनोमय कोष-(इच्छा-शक्ति) (४) विज्ञानमय कोष (बुद्धि शक्ति) जिससे सत्-असत्, उचित, अनुचित का निर्णय किया जाता है। (५) आनन्दमय कोष-जिसके द्वारा सुख की प्रतीति होती है।

ये पाँचों कोष आत्मा के प्रकाश से ही प्रकाशित होते हैं। इन सबका शासक, राजा जीवात्मा है। वही सुरथ है; किन्तु जब वह अपने को सामर्थ्यहीन, दीन दुर्बल, कंगाल समझने लगता है तो उसे अपना ही जीवन भार प्रतीत होता है, और सोचता है कि समाज के सभी लोग हमसे चाहते हैं न कि हमको, सुरथ की यह अवस्था सभी की है। अब वेचारा स्त्री, पुत्रादि से अपमानित होने पर घोड़े पर बैठकर वन की ओर चल दिया। ‘वन-व्रण सम्भक्तौ’ वन का अर्थ भजनीय स्थान होता है। प्रायः व्यक्ति ऐसी अवस्था में वैराग्य प्राप्त करता है। जबतक समाज तथा संसार से निराशा नहीं होती, तब तक भगवान् की ओर कोई नहीं चलता। इसी से जिन परिवारों में स्त्री-पुत्रादि से बहुत सुख मिलता है; उन परिवारों में पूर्वज लोग “चौथेपन जाइये नृप कानन” की बात भूल जाते हैं। सुरथ घर से निकला हुआ अकेला ही समझ रहा है; किन्तु वासना रूपी घोड़े पर बैठ कर गया है; तब भला एकाकी कैसे? ‘एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम्, विचार करने से विदित होता है कि साधना स्थल की ओर बढ़ते समय यह वासना साथ नहीं छोड़ती।

यही वासना उसके वैराग्य को शिथिल कर देती हैं यदि इस वासना का उपासना में परिवर्तन हो जाये, तो काम से हटकर राम में लगा देती है ।

राजा एक आश्रम में पहुँचा । घोड़े से उतरकर आश्रम के पवित्र वातावरण को देखने लगा, बहुत से महात्मा साधना में संलग्न हैं ब्रह्मचारी वेद-ध्वनि कर रहे हैं, होम-धूम अपनी दिव्य गन्ध समस्त दिशाओं में विकीर्ण कर रहा है, पशु-पक्षी निर्भय निर्द्वन्द्व निर्वैर विचरण कर रहे हैं । यही आश्रम शब्द का अर्थ भी है । 'श्रमु तपसि खेदेच' जहाँ धर्म और मोक्ष के लिए पुरुषार्थ होता हो वह आश्रम है; और जहाँ अर्थ, काम के लिए पुरुषार्थ होता है उसे परिश्रम कहते हैं । आश्रम में अहिंसा की प्रतिष्ठा होने के कारण निर्वैर भाव नैसर्गिक है । 'अहिंसा प्रतिष्ठाभ्यां वैर त्यागः' यह निर्वैर भाव मैंने स्वयं देखा है ।

हमारे गुरुदेव पीताम्बरा पीठ दत्तिया (मध्य प्रदेश) में प्रातः अपने कक्ष से निकलकर जैसे ही बाहर आते थे; और प्रसाद वितरण करने लगते थे, वैसे ही कौआ, गिलहरी, बिल्ली और कुत्ता चारों दौड़कर पृथ्वी पर पड़े प्रसाद को पाने लगते थे । उनमें परस्पर किसी प्रकार का विरोध नहीं था । अपने - अपने हिस्से का प्रसाद पा लौट जाते थे । एक बात यह और निश्चित है कि भजन के परमाणु इतने प्रबल होते हैं कि भजनीय स्थल आश्रम में विकारों का प्रभाव नहीं पड़ता है; जैसे अकेले प्रह्लाद पर असंख्य दैत्य बालकों का प्रभाव नहीं पड़ा, अपितु प्रह्लाद ने ही उपदेश देकर सबको प्रभावित कर लिया था । यही आश्रम की विशेषता है ।

जिस पवित्र, शान्त, सुरम्य, सिद्ध स्थल पर 'सुरथ' जो पहुँचे वह 'मेधा' ऋषि का आश्रम था । वे महर्षि बड़े तपस्वी और धर्मनिष्ठ योगी थे । उन्होंने शान्त, क्लान्त एवं तृषार्त पथिक को विश्राम दिया और मन को शान्त किया । जैसे शरीर के लिए

भोजन आवश्यक है वैसे ही बुद्धि के लिए सत्संग का भोजन परमावश्यक है। 'मुनिना तेन सत्कृतः' मननशील महातपा मेधा ने उन्हें उनके स्वरूप का बोध कराया। यही सत्कृतः शब्द का अर्थ है। उन्होंने कहा—“तुम तो राजा हो, अजर, अमर, अविनाशी असंग आत्मा हो। सभी इन्द्रियाँ तुम्हारे शासन में हैं। जिस परिवार से तुम अपमानित हुए हो, जिस राज्य और कोष से तुम अपने को वञ्चित (रहित) समझ रहे हो, वह तो तुम्हारा था ही नहीं।

सपने होइ भिखारी नृप, राजा रंक ते होइ ।

जागे हानि न लाभ कछु, तिमि प्रपञ्च जिय जोइ ॥

स्वप्न में एक राजा भिखारी हो जाता है और भिखारी राजा बन जाता है; किन्तु जगने पर वह पूर्ववत् अपना स्वरूप ज्यों का त्यों ही देखता है। ठीक इसी तरह 'तुमने राज्य और परिवार मेरा है' भूल से यह कल्पना कर ली थी। इसी कल्पना के कारण तुम दुःखी हो रहे हो। माँ के पेट से आने पर भला कौन मेरा, कौन तेरा होता है। 'बीच ही मिले बीच ही छूट जावें। ऐसे साथी, सामान के प्रति मोह करके दुःखी होना ना समझी है।

बचपन में बताया अर्थ काम सत्य है ।

जवानी में बताया धरा धाम सत्य है ।

पक्षी जब पिंजड़े से उड़कर चला गया,

तब लोगों ने बताया राम नाम सत्य है ।

इन बातों का ही परिणाम है कि आज समाज में वयोवृद्ध लोगों की अवहेलना हो रही है। यदि बचपन में बच्चों को यह शिक्षा दी गई होती कि केवल अर्थ और काम ही सत्य नहीं है, वरन् राम नाम भी सत्य है; तो बड़े होने पर बालक अपने बड़ों का अपमान कदापि न करते।

मेधा ऋषि ने राजा सुरथ को समझाया कि तुम जो यह चिन्तन कर रहे हो—'मेरी रानी कैसी होगी, बच्चे कैसे होंगे,

घोड़े कैसे होंगे सो यह सब तुम्हारे राग के कारण हो रहा है ।
इस राग को छोड़ो और भगवान् का चिन्तन करो ।

आत्म-दर्शन से राग-द्वेष को मारने का सिद्धान्त भगवान् ने गीता में भी दिया है । गीता के लगभग पन्द्रह-सोलह श्लोकों में आत्मा को अजर, अमर, अविनाशी, नित्य शुद्ध-प्रबुद्ध होने का वर्णन है और देह नाशवान है अतः किसी प्रकार के शोक का कारण केवल तुम्हारा राग ही है ।

जितनी भी आकृतियाँ हैं वे सत् तत्त्व से भाषित हो रही हैं, जितनी भी प्रतीतियाँ हैं वे चित् तत्त्व से और सुख की प्रतीतियाँ आनन्द तत्त्व से भाषित हो रही हैं । बुद्धि में यह दृढ़ निश्चय होना चाहिए कि सभी देश में, सभी वेश, सभी काल में एक परमात्मा ही दीख रहा है—

हर देश में तू, हर वेश में तू,
तेरे नाम अनेक तू एक ही है ॥
तेरी रंग भूमि यह विश्व - धरा,
हर खेल में, मेल में तू ही तू है ॥

इस निश्चय के बनाये रखने पर अच्छी या बुरी परिस्थितियों के आने पर मन सुखी दुःखी नहीं होगा । दिन में न जाने कितनी बार सत्त्व, रज, तमोगुण सम्बन्धी नाना वृत्तियाँ आती और जाती रहती हैं । इनके बदलने पर स्वयं को बदला हुआ नहीं समझना चाहिए । शास्त्रों में बताई गई परम्परा को नष्ट करने वाले इन राग-द्वेषादि से सदा ही सावधान रहना चाहिए ।

सावधान जाना ही होगा,
ओ आने वाले इतना समझ ले,
इस जग से तुमको जाना ही होगा ।
यदि रह गई हैं कुछ वासनायें,
उनके लिए फिर आना ही होगा ॥

जब जाना निश्चय ही है फिर इन गीत पंक्तियों को अपना कण्ठहार बना लेना ही जीवन को सफल बना लेना है—

हरि के भजन में, हो जा रे दीवाना । (टेक)

सपनों की दुनियाँ का, क्या रे ठिकाना ।

कब तक यह दुनियाँ तुझे अपनायेगी, अन्त में तेरे काम न आयेगी ।

झूठी है दुनियाँ, झूठे हैं सारे मोत, झूठी है रीति यहाँ झूठी है रे प्रीत ।

देख मेरे मनुवा, जाल में न आना, सपनों की दुनियाँ का, क्या रे ठिकाना ।

हरि के भजन में, हो जा रे दीवाना ।

इतना समझाने पर राजा सुरथ को आत्म-स्वरूप का कुछ बोध हुआ, शान्ति मिली, किन्तु कुछ क्षणों तक ही होश रहा । “तस्यै कंचित् स कालम्” और वहाँ से उठकर चल दिया । एक तो वासना के साथ गया था । दूसरी बाधा यह थी कि अभी समाधि साथ नहीं है । समाहित चित्त होना और श्रद्धा दोनों सद् सम्पत्ति हैं; इनके बिना उपदेश टिकता नहीं है । ‘श्रद्धान्वितो भूत्वा’ का यही अर्थ है कि श्रवण के साथ मनन अत्यन्त अपेक्षित है । तभी सुना हुआ सफल होता है, जब सुनने वाला समझना चाहे । दृष्टान्त आपके समक्ष है । घनघोर युद्ध काल में श्रीकृष्ण ने समझाया और अर्जुन ने समझ लिया, किन्तु सञ्जय ने धृतराष्ट्र को एकान्त में, शान्त वातावरण में सुनाया तब भी कोई फल नहीं हुआ ।

प्रायः साधकों के जीवन में भी ऐसा देखा गया है कि कुछ क्षणों के लिए वैराग्य आ जाता है । कहा भी गया है—

चार ठौर सब नरन के कछु वैराग्य चढन्त ।

गर्भ माँहि, शव के निकट,

कथा सुनत, रति अन्त ॥

किन्तु यह श्मशानिया वैराग्य दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान के अभाव में क्षणिक होता है । सांसारिक जीवों को इसी कथित उपर्युक्त स्थिति का ‘सुरथ’ नाम के माध्यम दिग्दर्शन कराया है—

इतश्चेतश्च विचरन्स्तस्मिन्मुनि वराश्रमे,
 सोऽचिन्तयत्तदा तत्र ममत्वाकृष्ट मानसः ।
 मत्पूर्वं पालितं पूर्वं मयाहीनं पुरं हि तत् । १२ ।
 न जाने मे सः प्रधानो मे शूरहस्ती सदामदः ।
 ये ममानुगता नित्यं प्रसाद धन भोजनैः । १४ ।
 सञ्चितसोऽतिदुःखेन क्षयं कोशो गमिष्यति ।
 एतच्चान्यच्च सततं चिन्तयामास पार्थिवः । १६ ।

आश्रम से बाहर घूमता हुआ राजा सुरथ चिन्तातुर एवं शोक ग्रस्त हो सोचने लगा, अहो ! न जाने मेरी प्रजा कैसे होगी, मेरा मतवाला हाथी कहाँ होगा ? जो लोग रात - दिन सदा मेरे पीछे लगे रहते थे; भोजन-शयन विश्राम में साथ रहते थे, वे कैसे होंगे ? इस प्रकार बहुत सी चिन्तायें करने लगा, मोहित हो गया । किंकर्तव्य विमूढ़ हुआ कुछ क्षणों पूर्व का बैरागी वह मेघाऋषि से सुना हुआ सभी कुछ भूल गया । अत्यन्त दुखद एवं विपत्त अवस्था में उसने “वैश्यमेकं ददर्श सः” एक वैश्य को आते हुए देखा । परस्पर परिचय हुआ, आने का कारण पूछा, बात-चीत होने लगीं । उसने भी वही परिस्थिति बताई जो राजा सुरथ का थी । वैश्य के मुख से ही निमृत् शब्दावली द्वारा उसकी दशा का अवलोकन कीआए :

समाधिनाम वैश्योऽहमुपन्नो धनिनां कुले । २१

पुत्रैर्दारैर्निरस्तश्च धन लोभाद् साधुमिः

विहीनश्च धनैर्दारैः पुत्रै रादाय मे धनम् ॥ २२

(१) समाधि (क) समाधीयते सर्वमस्मिन्-जिसमें सब कुछ लीन हो जाता है । इसका अनुभव करने वाला ही शेष रहता है ।

(ख) समाधीयते अस्मिन् पुरुषोपयोगाय - मनुष्य की आवश्यक वस्तुएं संकलित की जाय जहाँ ।

(ग) यहाँ समाधि एक का अर्थ समाहित चित्त अधिक अच्छा है ।

(२) वैश्य - जैसे वर्ण-व्यवस्था में समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी है वैसे ही साधक जीवन में लाभप्रद हैं; जो साधक अभी तक घर-द्वार-परिवार में आसक्त रहा, अब वहाँ से ऊबकर साध्य को ओर जाना चाहता है वह वैश्य साधक है । 'विशति साधना विशेषेषु' इस व्युत्पत्ति से यह अर्थ निष्पन्न होता है । जो अपने भीतर सत्य, क्षमा आदि गुणों की रक्षा के लिए सावधान है वह क्षत्रिय है और जो ब्रह्म-विज्ञान रस में निमग्न होना चाहता है अथवा निमग्न है वह ब्राह्मण है । जो इन तीनों साधकों की प्रेम और श्रद्धा से सेवा करता है वह शूद्र प्रकृति का है । यद्यपि ब्रह्म-सूत्र भाष्य में 'शुचा द्रवति इति शूद्रः' शोक ग्रस्त को शूद्र कहते हैं । इसी दृष्टि से सुरथ और समाधि दोनों शोक-ग्रस्त होने से शूद्र ही हैं; तथापि यहाँ क्षत्रिय और वैश्य बतलाये गये हैं । इसका अर्थ है राजा सुरथ अपने विकारों को सावधानी से देख रहा है और उनसे बचने के लिए भी आतुर है ।

समाधि ने भी राजा को अपनी चिन्ता का कारण अपने पुत्र स्त्री आदि से अपमानित होना ही बताया उसने कहा—मित्र ! घर-परिवार वालों से तिरस्कृत होकर निकाला गया समाधि नाम का वैश्य मैं पुनः उन्हीं की कुशलता की चिन्ता से व्यथित हूँ 'वे मेरे बेटे कहीं दुराचारी न हो जाएँ । यही गहरी वेदना है ।' राजा ने कहा—प्यारे जैसे तुम वैसे ही हम, घबराओ नहीं । स्वभाव से एक सी परिस्थिति वालों में शीघ्र मित्रता हो जाती है ।

एक बार चार मूर्खों ने एक व्यास का सम्मान देखकर सोचा-हम भी व्यास हो जायें, तो ऐसा ही सम्मान मिलेगा । बस, फिर क्या था, तुरन्त पीताम्बर धारण किये, चन्दन चर्चित

और मालाओं से विभूषित हो राज-दरबार में पहुँच गये । उन्हें देखकर काशी के चार विद्वान् समझकर कथा की व्यवस्था की गई । मंच तैयार हुआ । चारों व्यास आसन पर आसोन होकर कथा कहने लगे-प्रथम बोला-राजा पूछेंगे तो कहेंगे क्या ? द्वितीय ने कहा 'जैसे तुम भी वैसे ही हम भी । तीसरे ने तुरन्त जोड़ा । "कब तक चलेगी धांधा गर्दी" । चौथे ने कहा "जब तक चलेगी, तब तक चलेगी" । इस प्रकार क्रमशः चारों जल्दो-२ बोलने लगे । आज इस नवीन कथा-विधा को सुनकर श्रोताओं ने आश्चर्य तो किया, किन्तु राज दरबार के भय से कुछ बोले नहीं, अपितु बेचारे मन मारे सुनते रहे । आरती के समय राजा-रानी ने आकर उनको धांधागर्दी सुनी, तो बड़े रूष्ट हुए, डाट फटकार करके उन्हें नीचे उतार दिया, किन्तु वे तब भी अखण्ड रूप से अपनी कथा कहते ही रहे । तब सभा में विद्यमान उदार-हृदय एक विद्वान् ने उन चारों की रक्षा करने के लिए कहा-राजन् ! काशी में सूत्रात्मक कथा शैली की प्रथा है । पहला पण्डित सुमन्त की विवशता सहित कह रहा है कि महाराज दशरथ ने-रथ चढ़ाई दिखराय बन का आदेश दिया था; किन्तु अब सीता लक्ष्मण राम लौटते नहीं हैं, ऐसी स्थिति में राजा पूछेंगे तो हम क्या कहेंगे ? दूसरा पण्डित सुग्रीव-राम के मिलन-समय की कथा कह रहा है । राम सीता के विरहानल से दग्ध, देश-निर्वासित राजकुमार तो सुग्रीव (रुमा) पत्नी अपहरण अपमान से अपमानित, बड़े भाई बाली से प्रताड़ित युवराज, दोनों की समान स्थिति है अतः वे परस्पर कह रहे हैं जैसे तुम भी वैसे हम भी ।

महाराज ! तृतीय और चतुर्थ पण्डित मन्दोदरी और रावण के परस्पर संवाद की कथा कह रहे हैं । श्री हनुमान् जी के द्वारा लङ्का के दग्ध होने पर भावी आशंकाओं से भयभीत होकर रावण को समझाने का प्रयास करती है, किन्तु वह नहीं मानता, तब खिन्नमना वह कहती है-कबतक चलेगी यह धांधागर्दी वह उत्तर देता है "जब तक चलेगी तब तक चलेगी । इस प्रकार

ये चारों पण्डित सम्पूर्ण रामायण की कथा सूत्रात्मक शैली में कह रहे हैं। आश्वस्त होकर राजा ने तब उनका सम्मान किया।

यह कथा 'जैसे तुम भी वैसे हम भी' सुरथ-समाधि के लिए ही कही गई है। जीव में समाधि (समाहित चित्त की स्थिति) एक ही होती है। संकल्प-काल में चंचल-वृत्ति का चित्त है; किन्तु स्थिर होने पर वही आत्मा है। यह योगवाशिष्ठ में स्पष्ट है। इस प्रकरण में चित्त की अवस्थाओं पर विचार कर लेना अति प्रासङ्गिक होगा।

चित्त की अवस्थायें :

(१) सूढ़-विकार ग्रस्त तमः प्रधान (२) क्षिप्त—रजोगुणी, धर्माधर्म दोनों में प्रवृत्ति; यही विक्षिप्त भी है, जिसमें विशेष मनोराज्य होता है,, जैसे इस समय घर की याद करके 'सुरथ और समाधि का चित्त हो रहा है (३) सत्त्वगुणी—धर्म में प्रवृत्ति (४) एकाग्रवस्था—एक ही विषय में सहज वृत्तियों का प्रवाह रहता है। (५) निरुद्ध—देशान्तर, कालान्तर, वस्त्वन्तर की दौड़ छोड़ कर अपनी ओर लौटना ही दृष्टा ज्ञान है, भान है, अनुभव है। जब तक दृश्य में महत्व बुद्धि रहेगी, तभी तक दृश्य प्रपञ्च सत्य प्रतीत होता है; अपना ही स्वरूप जगत् है, यही अवस्था समाधि है।

संत भोले बाबा ने कहा : इस देह को मैं मानने से एक दो भासता। दो से बहुत हो जाँय है—एक दूसरे को त्रासता।

दर्पण भदन कुत्ता घुसा, तो कुत्ता ही सब दिखलात है।

बैरी समझ कर भौंकता ही भौंकता मर जात है ॥

यही दशा होने पर जीव दुखित होता है।

अब सुरथ समाधि के साथ हो गया, तो श्रद्धा का उदय हुआ। दोनों मिलकर पूज्य भाव से मेधा ऋषि के चरणों में उपस्थित हुए, श्रद्धावनत होकर प्रणाम किया और विनीत भाव से पूछा। यहाँ इससे पूर्व यह जानना आवश्यक है कि सुरथ

इन्हीं ऋषिचरणों में उपस्थित होकर उनका उपदेश सुन चुका था, किन्तु उस समय विक्षिप्त था और अब निरुद्ध अवस्था में होने से समाधि भी साथ है अतः श्रद्धावान् है । श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः (गीता) । श्रद्धा विना धर्म नहि होई (मानस) ।

‘शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्’ कहकर ही अर्जुन ने शिक्षा प्राप्त की थी । श्रद्धावान् के लिए गुरु शरण में पहुँच कर ही ज्ञान प्राप्ति कही गई है । इसी प्रकार आज गुरु चरणों में अपनी मोह-व्यथा निवेदन करते हुए सुरथ बोले—

दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्ट मानसौ ।

तत्किमेतन्महाभाग यन्मोहो ज्ञानिनोरपि ॥ ४४

ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढ़ता ॥ ४५

ऐसी मूढ़ता या मन की । (विनय पत्रिका)

उपदेश श्रवण की यही परम्परा है, सुनने की बेचैनी हो, अथाह श्रद्धा हो, योग्य गुरु हो । सब का मधुर मिलन हुआ । महर्षि मेधा बोले—हे भाग्यवान् ! जीव मात्र तीन प्रकार के है—

दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धास्तथा परे ।

केचिद् दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्य दृष्टयः ।

ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किं तु ते न हि केवलम् ॥ ४८-४९

(१) दिनान्ध—कुछ प्राणी दिन में अन्धे होते हैं । दिन शब्द काव्य प्रकाश-सप्तम उल्लास में प्रकाश अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । भारत में जन्म, सत्सङ्ग का सुयोग और समय भी अनुकूल, तथापि सत्संग में न जाना, ज्ञान प्राप्त न करने की प्रवृत्ति वाले दिन में अन्धे हैं ।

(२) रात्र्यन्ध—जिन्हें सत्संग से प्रयोजन ही नहीं है । अविवेकी, गुरुतर मूढ़ हैं, किसी हितैषी की भी बात सुनना पसंद नहीं करते; ऐसे व्यक्ति रात्रि में अन्धे हैं ।

(३) निषट अन्ध—इनके लिए दिन भी रात है। जो लोग ज्ञान-भक्ति दोनों से अलग रहते हैं। चार्वाक के सिद्धान्तानुसार 'खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ' वाले उदरम्भरी पशु-प्रवृत्ति के हैं वे इसी श्रेणी के हैं।

आहार-निद्रा-भय-मैथुनञ्च, सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।

धर्मो हि तेषामधियुको विशेषः धर्मेण हीना पशुभिः समानाः ॥

यद्यपि आहार - निद्रा - भय - मैथुन की प्रवृत्तियां पशु - पक्षियों तथा प्राणीमात्र में समान हैं; किन्तु बुद्धि या ज्ञान ही मनुष्य को इनसे विलग करता है; जिससे वह अपने को आत्म-स्वरूप को समझ सकता है। भगवान् कहते हैं—

सब मम प्रिय, सब मम उपजाये ।

सबते अधिक मनुज मोहि भाये ॥ (मानस)

मनुष्य ही विवेक का सम्मान करने में समर्थ है। अतः मनुष्य को ही समस्त शास्त्र-पुराण समझाये जा सकते हैं। वैसे काकभुशुण्डि जी भी कथा व्यास हैं, किन्तु वे अपवाद हैं। जिस मनुष्य ने ज्ञान और विवेक का इतना अधिकार प्राप्त किया है; वही प्राप्त विवेक का अनादर कर दुःखी हो रहा है यही माया की लीला है, यही भ्रम, भूल एवं अज्ञान है। सूर्य-पुत्र होकर भी अज्ञानान्धकार में भटकते हुए दुःखी होना जीव की घोर विडम्बना है। 'तथापि ममतावर्ते मोह गर्ते निपातिताः' समझदार होने पर भी मनुष्य अपने द्वारा कल्पित तथा निर्मित, मन से माने हुए स्त्री, पुत्र, मित्रों के जाल में फँस कर मोहित हो जाता है, यही मोह के गहरे गड्ढे में गिरना है। इससे निकलना बड़ा दुर्लभ है।

को छट्यो इहि जाल परि, कत कुरंग अकुलात ।

ज्यों ज्यों सुरझि भज्यो चहत, त्यों त्यों हि उरझि जात ॥

संसार के जाल से निकलना सचमुच ही दुर्लभ है। इसमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत् भगवान् की माया से मोहित हो रहा है। यह महामाया देवी बड़े-बड़े

ज्ञानियों, योगियों तथा तपस्वियों को अपने इंगित पर नृत्य कराती रही है। नारद, पराशर, विश्वामित्र की तो बात ही क्या, स्वयं ब्रह्मा और शंकर भी इस माया-पाश में आवद्ध हुए हैं, फिर सामान्य जनों की तो बात ही क्या ? इसलिए साधक को बहुत सजग एवं सावधान रहना चाहिये।

वर्तमान में ही एक बहुत बड़े तपस्वी महात्मा भाऊपुर में रहते थे; वे नित्य प्रातः एवं सायं भ्रमण के लिए ही कुटिया से निकलते थे। रास्ते में एक परिचित श्रद्धालु देवी पूछती थी “आप कहाँ जा रहे हैं ? प्रतिदिन वे इस प्रश्न को सुनते थे, उत्तर नहीं देते थे, नीचे को सिर किये हुए चले जाते थे। जब उनका अन्तिम समय आया; प्राण जाने वाले थे, तभी उन महापुरुष ने उस देवी को बुलाया और कहा- देवी ! तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मैं आज दे सकता हूँ क्योंकि आज मैं अपने घर जा रहा हूँ। मन की गति बड़ी चञ्चल होती है” चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथी बलवद् दृढम् । (गीता) शरीर में प्राण रहते हुए कहीं मैं अनुचित घर की ओर कदम न रख देता, इसी से अब तक उत्तर न दे सका था। इस दृष्टान्त से हमें भी सीख लेनी चाहिए।

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा । ५५

बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ।

तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ॥ ५६

सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ।

सा विद्या परमा मुक्तर्हेतुभूता सनातनी ॥ ५७

संसार बन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥ ५८

यह महामाया ही मेरी माँ है। माँ की करुणा और वात्सल्य भरा हृदय पुत्र के लिए कल्याणकारी होता है। उनकी प्रसन्नता ही मुक्ति का वरदान है। वे पराविद्या ही संसार रचती हैं। संसार-व्यवहार में अज्ञानी-जन अपने को बंधन में बंधा हुआ

मानते हैं जबकि बन्धन-काल में भी वह मुक्त ही है । अज्ञता के कारण ही अपने को बंधा समझता है और बन्धन के कारणों को कल्पित करके दुःखी होता रहता है ।

कालंहि कर्महि ईश्वरंहि मिथ्या दोष लगाइ (मानस)

इस दुःख में उसकी भूल, उसका अज्ञान ही कारण है ।

विद्वद्जन महामाया शब्द के व्युत्पत्त्यर्थक भिन्न-भिन्न अर्थ करते हैं—मीयते जगदनयेति माया अथवा ब्रह्मानन्द साक्षात्कारे प्रतिषेधं याति माया यद् दृश्यते तन्न सत्यमिति माया अर्थात् जिससे संसार बनता है । ब्रह्मानन्दानुभूति होने पर जिसका सर्वथा निषेध हो जाता है अथवा जिसके कारण प्रतीयमान प्रपञ्च सत्य न होने पर भी सत्य सा दिखाई दे रहा है, वही माया है । यह वेदान्त दर्शन है ।

शाक्त-साधकों के लिए यह महामाया माँ है; माँ के लिये भक्त की भावना इस रूप में उद्बेलित हुई है—कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति, पुत्र कितना भी कुपुत्र हो जाये, किन्तु माँ का स्नेहिल हृदय पुत्र के लिये करुणा परिपूर्ण ही रहता है । माया कृपायां दम्भे च, माया का अर्थ कृपा भी है, कुम्हार के घड़े का भीतरी हाथ है । भेद केवल दृष्टि का है, विचार का है; भगवान् के मोहिनी रूप को देख कर देवता प्रणाम करते हैं और दानव उद्धतता से परिपूर्ण विलासमयी चितवन् से निहारते हैं ।

इस दैवी भाव की दिव्यता से द्रवित हृदय राजा ने गुरुदेव के श्रुत उपदेश के पश्चात् पूछा—हे भगवन् ! आप जिसे महामाया कहते हैं वे कौन हैं ? कृपया उनके प्राकट्य, स्वभाव एवं चारित्रिक महत्व का वर्णन कीजिए । श्रद्धा एवं प्रेम से पूछे गये प्रश्न को सुनकर प्रसन्नमना मुनि ने कहा :

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम् । ६४

तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम ।

हे राजन् ! वे भगवती पराम्बा नित्य स्वरूप हैं, यह जगत् उन्हीं का रूप है, सब में वे ही व्याप्त हैं । उनमें सब और सब में वे ही हैं, तथापि समय समय पर वे देवों की कार्य-सिद्धि के लिये प्रकट होती हैं; यही उनकी करुणा है, वे साकार होने पर भी निराकार और निर्विकार ही रहती हैं ।

आप लोग इस पर थोड़ा ध्यान दीजिए—चेतन आत्मा के स्वरूप को ही यहाँ पराम्बा के रूप में बताया गया है । आप जानते हैं कि जीवित प्राणियों की देह से तभी तक प्रेम रहता है, या करते हैं; जबतक उसके भीतर चेतना का अनुभव हो रहा है । इस से सम्बन्ध हटते ही उसी देह को गंगा में प्रवाहित कर दिया जाता है । अतः स्पष्ट हो गया कि प्रेम दीखने वाली; दिखाई देने वाली देह से नहीं होता अपितु देह में न दिखने वाले चेतन से होता है; किन्तु अज्ञान के कारण मानव-देह वियोग का अनुभव करती है ।

आप भक्तजन पाषाण-प्रतिमा के सामने भी “मनोजवं मारुततुल्य वेगं, जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्” बोलते समय उस साकार मूर्ति में व्याप्त चेतन हनुमान जी का ही अनुभव करते हैं । वही चेतन परमात्मा निरुपाधि होने पर भी उपाधि वाला, निराकार होने पर भी साकार होने वाला अकारण ही अपनी कृपा-वश होकर साकार हो जाता है । जैसे भ्रम या भूल वश कोई व्यक्ति कुएँ में गिर पड़ता है तो उसे निकालने के लिए ‘गोताखोर’ को भी कुएँ में जाना पड़ता है । ऐसे ही भव कूप में पड़े हुए जीवों का उद्धार करने के लिए वही कभी राम, कभी घनश्याम, कभी मोहिनी, कभी स्वयं पराम्बा भगवती के रूप में अवतरित हो जाता है । भक्तजन उसकी लीलाओं में निमग्न रहते हैं । ऐसा कहकर महर्षि कथा सुनाने लगे ।

कल्प के अन्त में सम्पूर्ण जगत् के एकार्णव (क्षीरसागर) में निमग्न होने पर विष्णु भगवान् योग निद्रा का आश्रय ले शयन

कर रहे थे; उस समय उनके कानों के मूल से मधु और कैटभ नाम से विख्यात दो भयंकर असुरों ने जन्म लिया। पैदा होते ही भगवान् विष्णु के नाभिकमल में विराजमान प्रजापति ब्रह्मा जी को खाने के लिए दौड़े। उन दोनों भयानक असुरों को अपने पास आये और भगवान् को सोये हुए देखकर ब्रह्मा जो घबरा गये। उन्होंने भगवान् को जगाने के लिए एकाग्रचित्त-होकर उनके नेत्रों में निवास करने वाली योग-निद्रा का स्तवन किया। इसी स्तुति को 'रात्रि-सूक्त' कहते हैं।

इस कथा का भाव यह है : सर्वत्र व्याप्त सत्ता को विष्णु कहते हैं। 'विष्णु व्याप्तौ' वेवेष्टेति विष्णुः वह परमात्मा सर्वत्र, सर्वथा, सर्वदा होने पर भी सत्वगुण में बुद्धि स्थिर होने पर ही अनुभव में आता है। रजो गुण और तमो गुण की अवस्था में उसका अनुभव नहीं होता है। क्षीर सागर सत्वगुण का रूप है। जल शीतल, सुखद, मधुर होता है—जल जीवन का भी पयाय है, रस है, 'रसो वै सः' परमात्मा के लिए प्रयुक्त हुआ है, इसी से शान्त प्रकृति के साधु महात्मा अपने अन्तःकरण के प्रकाशक आत्मा को अपने में ही अनुभव करके सदा प्रसन्न रहते हैं। उन भगवान् की नाभि ही आकाश है। भागवत् में यह प्रयोग आया है—“नभः एव नाभिः”। इसी व्याप्त आकाश (नाभि) से अनासक्ति का प्रतीक कमल पैदा होता है। जिससे ब्रह्मा जी प्रकट होकर सृष्टि रचना करते हैं।

इस पुराण भाषा को आप समझ गये होंगे कि न आकाश में कमल पुष्प होता है और न ब्रह्मा जी प्रकट होकर सृष्टि रचना करते हैं 'यह भाषा प्रतीयमान जगत् परमात्मा है।' के रहस्य को समझाने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'।

रात्रि-सूक्त में की गई स्तुति बड़ी ही मार्मिक है। यह स्तोत्र प्रथम अध्याय के श्लोक संख्या सत्तर से सतासी श्लोक

तक मूल में देख सकते हैं। ब्रह्मा जी स्तुति करते हैं, तुम्हीं स्वाहा (देवताओं का भोजन), तुम्हीं स्वधा (पितरों का भोजन), तुम्हीं वषट्कार हो। तुम्हीं नित्य अक्षर प्रणव में अकार, उकार, मकार इन तीन मात्राओं के रूप में हो। इनके अतिरिक्त जिसका उच्चारण नहीं किया जा सकता वह बिन्दु रूपा, अर्द्ध मात्रा रूपा भी तुम्हीं हो। यहाँ दार्शनिकों के लिए स्पष्ट किया गया है कि जिस परमात्मा का वाचक प्रणव है—**तस्य वाचकः प्रणवः**, वही ओंकार पराम्बा का स्वरूप है अथवा पराम्बा ही ओंकार स्वरूपा है।

पुनश्चः—हे देवी ! तुम्हीं सन्ध्या सावित्री हो, सृष्टि स्थिति, संहारकारिणी हो; तुम्हीं महा-विद्या, महा-मेधा, महास्मृति, तुम्हीं प्रकृति और तुम्हीं बोध स्वरूपा बुद्धि हो। तुम्हारे सभी आयुध कल्याणकारी हैं। तुम्हीं सुन्दरता का स्रोत हो, परा और अपरा दोनों से परे तुम्हीं हो। जो कुछ भी दिखाई, सुनाई या प्रतीति हो रही है, वह सब कुछ तू ही तू है।

जब भगवान् को भी तुमने निद्रा-निमग्न कर दिया है, तब भला तुम्हारी स्तुति किस शक्ति से की जाये, क्योंकि शक्ति तो तुम स्वयं ही हो। अब कृपा कर इन दोनों दैत्यों को मोहित कर भगवान् को जगा दो, जिससे जगकर आपकी शक्ति पाकर वे इन दोनों को मार डाले।

इस प्रकार स्तुति करते ही महा माया योग-निद्रा भगवान् विष्णु के नेत्र, मुख, नासिका, बाहु और हृदय से निकल कर ब्रह्मा जी के सामने प्रकट हो गई। भगवान् जग गये, उन्होंने देखा, दो विशाल दैत्य ब्रह्मा जी को खाने का प्रयत्न कर रहे हैं। तत्काल भगवान् ने उन्हें ललकारा—युद्ध प्रारम्भ होकर पाँच हजार वर्षों तक चलता रहा; किन्तु विजयश्री ने किसी का वरण नहीं किया। उसी समय महामाया ने उन दैत्यों को मुग्ध कर दिया; जिससे वे भगवान् से बोले—

“उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम्”

हम तुम्हारी वीरता से प्रसन्न हैं, जो चाहो, वरदान माँग लो ।

तब भगवान् ने कहा—‘भवेतामद्य मे तुष्ठौ मम वध्यावुभावपि । किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मम । ६८ । यदि तुम लोग मुझसे प्रसन्न हो, तो मेरे हाथ से मारे जावो, यही वरदान दीजिए । यह सुनकर वे बोले—जहाँ पृथ्वी पर जल की बून्दें न हों न सूखा स्थान हो, वहीं हमारा वध करो । भगवान् कमल नयन ने ‘तथास्तु’ कहकर विराट स्वरूप धारण कर दोनों के सिर अपनी जङ्गाओं पर रख कर चक्र से काट डाले । इस प्रकार वह महामाया ब्रह्माजी की स्तुति से प्रकट हुई थी ।

कथा पर विचार करने से स्पष्ट भाव प्रकट होता है कि सर्वत्र व्याप्त परमात्मा विष्णु भगवान् हैं समस्त दिशायें उनके कान हैं । भागवत् में कहा है—इन्द्रादयो बाहव आहुरुन्ः कर्णौ दिशः श्रोत्रममुष्य शब्दः । २/१/२६ इसी से भक्त उन्हें कहीं से भी पुकारें; वे तुरन्त सुन लेते हैं । “चींटी के पर नुपूर बाजे वह भी साहब सुनता है ।” यह प्रसिद्ध उक्ति है । आत्मशंसा एवं परनिन्दा सुनना इन दिशाओं रूपी कानों का मेल है । यही दोनों मधु और कैटभ हैं, दोनों का अर्थ एक ही है । जिन लोगों को दूसरे की निन्दा करने सुनने में रस आता है, मिठास आता है—यही मधु-मीठा राग है— सुन-सुन कर पैदा होने वाले दोनों दैत्य हैं—‘रज्यतेऽनेनेति रागः । पाणिनिजी का सूत्र है तेन रक्तं रागात्’ जिससे चित्त-हृदय रङ्गीन हो जाता है वही राग है । आजकल स्कूल कालेजों में बालक बालिकायें परस्पर एक दूसरे की क्षणिक विशेषतायें सुनकर परस्पर मुग्ध हो जाते हैं । माता-पिता शास्त्र का विधान अलग कर देते हैं । यह प्रेम नहीं राग है, मीठी जंजीर है—बाँधने वाली है । जो लोग कान के कच्चे होते हैं उनको तो यह राग पैदा करते देर नहीं लगती । इसी प्रकार द्वेष है—‘द्विगुणितं विषमितिद्वेषः’ दूना जहर है ।

कीटवद् भाति कीटभ एव कैटभः एक कीड़ा ऐसा होता है जो लकड़ी में छेद कर देता है। छोटा कीड़ा इतनी कठोर लकड़ी को छेद डालता है—यही द्वेष है, शत्रु है शातनात् शत्रुः जिसके चिन्तन मात्र से दिल दिमाग में छेद होता रहे, ऐसा विचित्र शत्रु है यह द्वेष। जिस वस्तु, व्यक्ति से द्वेष हो जाता है वह व्यक्ति नगर से, देश से क्या पृथ्वी से भी चला जाय, किन्तु हृदय पटल से विलीन नहीं होता, उसका नेगेटिव फोटो चित्त में अंकित हो जाता है, जो चिन्तन करने से दुःख दग्ध करता है। शत्रु बाहर के नहीं, बाहर नहीं अपितु अपने ही हैं और अन्दर से ही हैं जो राग-द्वेष के रूप में रहते हैं इन्हीं से जीव-बन्धा हुआ है।

इन्हीं से सजग करने के लिए गीताकार कहते हैं—

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे, राग द्वेषौ व्यवस्थितौ ।

तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥ ३-३४ ॥

अर्थात् इन्द्रियों का विषयों पर सहज राग-द्वेष निश्चित है। अतः बड़ी सावधानी से इन दोनों राग-द्वेष शत्रुओं से बचना चाहिए; लक्ष्य में ये ही बाधक हैं। जिन्होंने इन दोनों को जीत लिया, वे ही परम प्रसाद के अधिकारी हैं।

राग द्वेष वियुक्तस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।

आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ २-६४ ॥

राग-द्वेष रूपो लुटेरों से सुरक्षित रहते हुए जिसकी इन्द्रियाँ विषयों के प्रति सहज भाव से व्यवहार करती हैं—न किसी वस्तु के पाने की आकांक्षा है न किसी पदार्थ से विरोध या घृणा; न किसी से अटके न सटके, ऐसे साधक साध्य को शीघ्र प्राप्त कर लेते हैं। इन्द्रिय दास को मानसकार ने अभागी शब्द से सम्बोधित किया है—

उमा कहूं ते लोग अभागी - हरि तजि होयँ विषय अनुरागों ।
इन्द्रिय लोलुप जे जग माँही, विषय भोग पर प्रीति सदाई ॥

इतने बांध बांधने पर भी ये राग-द्वेष रूपी प्रबल शत्रु किसी को छोड़ते कहाँ हैं ? सामान्य जन की तो बात क्या, पैदा होते ही इन दोनों ने ब्रह्मा जी पर धावा बोल दिया—विधाता पर आक्रमण करने का यहाँ विशेष भाव है—“विधानं विधिः” ब्रह्मा जी कानून के रूप हैं। संसार के जीने के लिए तथा जीवन को सफल बनाने के लिए शास्त्रों ने विधान बनाया है। “रामवद्वर्तितव्यम् न रावणादिवत्” राम की तरह आचरण करना चाहिये रावण की तरह नहीं—यह विधान है, किन्तु राग-द्वेष हृदय में आते ही विधान का भक्षण करने लगते हैं; कितना सुन्दर संकेत है ? जज अपने सम्बन्धी को दण्डित नहीं कर पाता, चाहे वह सम्बन्धी रिश्वत से ही बना हो, बड़ा व्यावहारिक है। यहाँ तक देखा जाता है कि जिसके प्रति राग होता है वही ईमानदार और सद्गुणी दिखाई देता है। जैसे अभी एक पुत्र ने किसी लड़की में आसक्ति के कारण पिता की हत्या कर दी; एक पत्नी ने अपने पति की हत्या कर दी और दोनों बच गये कानून से; तब कहाँ रहा शास्त्र और माता-पिता तथा गुरु जनों का उपदेश ? अब समझ लीजिए यही ब्रह्मा जी, विधान और वेद का संकेत वेद-निर्माता ब्रह्मा जी हैं। जब शास्त्र के विधान का लोप होने लगता है, संकट की घड़ी आती है, तभी भगवान् की याद आती है। यदि जीवन में संकट न आवे तो कथञ्चित् भगवान् की भी याद न आवे—

दुखों से अगर चोट खाई न होती, तेरी प्रभो ! याद आई न होती ।
यही कारण है भगवान् के प्यारे भक्त यही कामना करते हैं—

सुख के माथे सिल परे, नाम हृदय ते जाय ।

बलिहारी वा दुःख की, पल-पल नाम रटाय ॥

भगवान् विष्णु के शयन का भाव यह है कि शेष शब्द अनन्तवाची है। सब कुछ प्रलय होने पर भी जो शेष रहे, वही अधिष्ठान—तत्त्व शेषशायी सर्वत्र व्याप्त परमात्मा है, जिनका अनुभव योगी जन गुणों से परे होने पर सात्त्विक वातावरण में

करते हैं। उनका विश्राम ही जीवन-मुक्त अवस्था है। तत्त्वज्ञ के लिए जगत् तीनों कालों में मिथ्या ही स्वप्नवत् भाषित हो रहा है—इसी से विष्णु वो क्षीर सागर में शयन करते हुए कहा गया है—

या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।

यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ २/५६ ॥

योगियों की रहनी अन्य प्राणियों से भिन्न होती है, जब सब सोते हैं—संयमी जागता है, जगत् जागता है तो संयमी सोता है। भाव यह है कि दुनियाँ भगवान् से सोई हुई है और नाशवान् में जगी हुई है।

दूसरी बात यह है कि व्यवहार काल में जैसे तत्त्वज्ञ महा-पुरुष भी अविद्या में आकर ही व्यवहार करता है—हँसने रोने की लीला संसारी लोगों के कल्याण के लिए करता है—लोक-संग्रह के लिए यह लीला बन्धन कारक नहीं होती—

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्म फले स्पृहा ।

इति मां योऽभिजानाति, कर्मभिर्न स बध्यते ॥ १/१४ ॥

निष्क्रिय ब्रह्म रावण एवं कंस का संहार नहीं कर सकता, उसे भी माया शक्ति के द्वारा श्री राम या श्री कृष्ण वेश में आना पड़ता है। ऐसे यहाँ जब ब्रह्मा जी पर संकट देखा तो उनके लिए करुणा करके महामाया का आश्रय लेकर विष्णु भगवान् भी जागे और लड़ने लगे। प्रत्येक मानव शक्ति-पुञ्ज है, अपार शक्ति-आगार है। मनुष्य एवरेस्ट पर विजयी बना। चंद्रलोक में विहार कर चुका; मंगल लोक में जाने के लिए पग मचल रहे हैं। बहुत बड़ी शक्ति सोई हुई है, उसे जागृत करने की आवश्यकता है। अभ्यास द्वारा सब कुछ किया जा सकता है। ब्रह्मा जी अभ्यास द्वारा अपने सोई हुई शक्ति को जगा कर सृष्टि सृजन करते हैं, विष्णु जी पालन करते हैं। इसी प्रकार मनुष्य भी अपने अभ्यास द्वारा तथा शक्ति को जागृत करके उसी शक्ति

को प्राप्त कर सकता है । जिस शक्ति से राग-द्वेष के मधु-कैटभ का वध कर सकता है ।

विष्णु भगवान् पाँच हजार वर्षों तक लड़ते रहे, किससे ? अपने कर्णमैल से उत्पन्न हुए मधु कैटभ से-राग-द्वेष से । समझने की बात है राग-द्वेष जिस अन्तःकरण से पैदा होते हैं उसी से लड़ते हैं, संघर्ष करते हैं उसकी शान्ति भंग कर देते हैं । यह कितना अच्छा होगा कि दूसरों की निन्दा स्तुति का परित्याग कर उतनी देर आत्म चिन्तन करें, स्वाध्याय करें अथवा जप करे; जिससे अपना कल्याण हो और अन्तःकरण से प्रसूत होने वाले राग द्वेष का प्रसव (जन्म) ही न हो सके । तब न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी । इसके विपरीत दूसरे का चिन्तन करने से अन्तःकरण दूषित होता है और समय का दुरुपयोग भी होता है, और छाती पर खड़े हो जाते हैं घोर यन्त्रणा देने वाले काम-क्रोध, लोभ-मोह जैसे सेनापतियों सहित राग-द्वेष जैसे अप्रतिम प्रबल बलशाली शत्रु ।

पाँच हजार वर्षों में प्रथम 'पाँच' शब्द संख्या वाची है । पाँच प्राण, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ; पंच महाभूत, पञ्च-तन्मात्रायें अथवा प्रपञ्चों में ही जोड़ लिया जाय, तब इन सब के संघात से जीव देह धारण करता है, और जब तक जीव इन प्रपञ्चों से जुड़ा रहता है तब तक अन्त वाला होते हुए भी अनन्तकाल तक भटकता रहता है; क्योंकि अन्ते या मतिः सा गतिः अर्थात् अन्तकाल में इस प्रपञ्च की जिस वस्तु या व्यक्ति की याद आयेगी आगे का जीवन उसी के अनुसार होगा । इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है जड़ भरत का जीवन, जिन्हें मृग शावक की वासना से मृग-योनि में पैदा होना पड़ा ।

श्रीमद्भागवत महापुराण में पुरञ्जन की कथा भी इस बात की पुष्टि करती है कि पुरञ्जन को अन्तिम समय में पुरुञ्जनी के चिन्तन के कारण अगले जन्म में नारी शरीर धारण करना पड़ा ।

पुराणों में संख्या का भाव अनन्त अर्थ में ग्रहण किया जाता है। अन्तमयी सृष्टि का अन्त भी अनन्त में होता है और सृजन भी ! आपने देखा कि पाँच तत्वों का संयोग पाते ही अनन्त जीव अनन्त ईश्वर का अंश अन्त वाला-नाशवान बन गया, और यूँ जन्म-मरण के आवागमन चक्र में भटकने लगा, जिसका मूल कारण बन गया राग-द्वेष ।

अब प्रश्न उठता है इस राग-द्वेष का नाश कैसे हो ? यद्यपि आत्म-चिन्तन, स्वाध्याय तथा जप का संकेत अभी दिया था फिर भी राग-द्वेष की संक्रामक व्याधि का उपचार इनके उलटने में ही है । संसार के राग को उलट कर अनन्त (भगवान्) से अनुराग कीजिए :-

मिलहि न रघुपति बिन अनुरागा, किये कोटि जप जोग विरागा ।
मम दर्शन फल परम अनूपा, जीव पाय निज सहज स्वरूपा ॥

बिना अनुराग के परमात्मा नहीं मिलते हैं । अनुराग हृदय की सहज वृत्ति है, केवल उसकी दिशा परिवर्तित करनी है । जहाँ-जहाँ मन जाता है वहीं-वहीं परमात्मा का दर्शन कीजिए । 'परमात्मा का दर्शन' कैसे करें—इस पर विचार कीजिए कि जहाँ मन जाता है वहाँ परमात्मा का अस्तित्व है या नहीं, तब मालूम पड़ेगा कि परमात्मा के अस्तित्व के बिना कोई पदार्थ, वस्तु या व्यक्ति रह नहीं सकता ।

माता-पिता, पुत्र-पुत्री आदि या अन्यो के साथ जो भी व्यवहार होता है वस्तुतः परमात्मा के ही साथ होता है, क्योंकि परमात्मा से सम्बन्ध छूटते ही सब अस्पृश्य हो जाते हैं । अतः स्वतः सिद्ध हो रहा है, हमारे समस्त व्यवहार परमात्मा से ही हो रहे हैं । इस सत्य को न समझने के कारण ही हम ब्राह्म आकार को ही प्रेम या द्वेष का अधिष्ठान समझे हुए हैं ।

वृहदारण्यक उपनिषद् में यह बात बहुत स्पष्ट रूप में वर्णित है कि परमात्मा के मूर्त और अमूर्त रूप को समझने

के लिए मूर्त रूप का सहारा लिया जाता है। उदाहरणार्थ अमूर्त गन्ध को समझने के लिए मूर्त पुष्प का आश्रय लिया। हम जिसे भी गले लगाते हैं, छाती से चिपकाते हैं तभी तक, जब तक उसमें चैतन्य विराजमान है। जहाँ मालूम हुआ कि इसमें अब चैतन्य नहीं है उसी क्षण हटा देते हैं, चाहे कितना भी अनन्य सगा-सम्बन्धी क्यों न हो। इससे सिद्ध है कि हम सब न दीखने वाले भगवान् से ही प्रेम करते हैं दीखने वाले वाह्य आकार से नहीं।

समस्त व्यवहार परमात्मा से ही हो रहे हैं, ऐसा तात्त्विक बोध होने पर व्यक्ति को सुख-दुःख की स्थिति भी विचलित नहीं कर सकती। साधक और भक्त प्रारब्ध से कदापि सुख की कल्पना नहीं करते, क्योंकि वे जानते हैं कि जरा सी धड़कन बन्द होते ही सुख के साधन पड़े ही रह जायेंगे। अतः वे दुःख को अपने कर्मों का फल और सुख को परमात्मा की कृपा ही मानते हैं। दूसरे सुख की आशा करना ही मधु है—राग है और दूसरे से दुःख की आशा करना कैटभ है—द्वेष है।

कोई अपने सुख में फूला, कोई अपने दुःख में भूला

सुख भी झूठा, दुःख भी झूठा

अतः इनसे चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं। साधकों के लिए तो यह बात महत्वपूर्ण है कि अपने भीतर सत्कर्म के, ईश-भजन अनुष्ठान के, भक्ति-भाव एवं ज्ञान-वैराग्य के परमाणुओं को प्रबल करें, अपनी सोई हुई शक्ति को जागृत करें, तब जो राग-द्वेषादि प्रवृत्तियों से चित्त में संघर्ष भी होगा, तो पराजय नहीं होगी। सप्त-शती में यही संकेत है कि दैत्यों ने श्री भगवान् विष्णु की वीरता की प्रशंसा भी की और स्वयं उनके ही हाथ से मरने को तैयार भी हो गये।

जीवन में किसी प्रारब्ध से या कुसंग से बुरी आदतें आ गई हैं तो घबराने की आवश्यकता नहीं, अपितु उन्हें दूर करने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए। अन्त में पराम्बा की कृपा ही

सर्वोपरि समझनी चाहिए क्योंकि जो राग-द्वेषादि संसारी जनों के प्रति घातक हैं वही परमात्मा के प्रति समर्पण से साधना है । भगवान् के चरणों में ही मधु-कैटभ का वध हुआ है । कितना सुन्दर संकेत है कि इन दोनों राग-द्वेष का नाश प्रभु के चरणों में ही होता है ।

सुदर्शन चक्र का भाव भी स्वदर्शन, आत्मबोध है । आत्म-बोध होने से दोषों से सर्वथा मुक्ति मिल जाती है, क्योंकि उस आत्मवान् का कोई अपना-पराया नहीं होता है, जब दूसरे की प्रतीति ही नहीं, तो राग-द्वेष होगा किससे ?

निर्द्वन्द्वो नित्य सत्त्वस्थो निर्योग क्षेम आत्मवान् । गीता ।

आत्म-निष्ठ में निर्द्वन्द्वता, निश्चिन्तता सहज आ जाती है 'कोई गैर नहीं कोई और नहीं', इस निश्चय से जीवन सरस होता है, क्योंकि राग होने पर विषयों का चिन्तन, चिन्तन से मिलन की कामना (इच्छा) उदय होती है । कामना-पूर्ति से लोभ और मोह तथा काम-पूर्ति न होने पर क्रोध, तथा क्रोध से मोह तत्पश्चात् बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है; विनाश के लक्षण हो जाते हैं ।

इस संदर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता के आसक्ति-वंश-वृक्ष विकास का अवलोकन-मनन आवश्यक ही नहीं वरन् वरणीय है । अतः देखिये :—

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।

सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ।

क्रोधाद्भुवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृति विभ्रमः ।

स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात् प्रणश्यति । गी २/६२

अतः प्रबल शत्रु राग-द्वेष ही हैं इन्हीं से काम-क्रोधादि प्रकट होते हैं :

काम एष क्रोध एष रजो गुण समुद्भवः ।

महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ गी० ३/३७ ॥

रजोगुण से उत्पन्न हुये इन दुष्टों को (काम-क्रोध) महापापी शत्रु समझना चाहिये ।

इहैव तैर्जित, सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः । गी० ५/१६

शक्नोतीहैव सोढुं प्राक् शरीर विमोक्षणात्

काम-क्रोधोद्भवं वेगं सः मुक्तः सः सुखी नरः ॥ ५/५३

शरीर त्याग से पूर्व ही जिन साधकों में इन दुष्टों को (शत्रुओं) को जीत लिया है, वे ही सुखी हैं, सम हैं तथा योगी हैं ।

इस प्रकार प्रथम चरित्र में भगवद्गीता के उपदेशानुसार ही राग-द्वेष-मधु कैटभ से निवृत्ति आख्यान के द्वारा समझाई गई है, और जीवन के विविध व्यावहारिक पक्षों को सुधारने का संदेश दिया है । समाधि सहित राजा सुरथ ने इस सदुपदेश को सुना और वे बहुत प्रसन्न हुए ।

यही फल श्रुति है :-

काम-क्रोध विमुक्तानां, यतीनां यतचेतसाम् ।

अभितो ब्रह्म निर्वाणं, वतंते विदितात्मनाम् ॥ गीता ५/२६

अर्थात् राग-द्वेष से उत्पन्न होने वाले काम-क्रोध से रहित होकर योगी परम शान्ति या परम प्रसन्नता का अनुभव करते हैं, क्योंकि राग-द्वेष से ही राहु और केतु की तरह सूर्य (बुद्धि) और चन्द्रमा (मन) को ग्रहण करते रहते हैं । एक में सिर है, विचार तो कर सकता है, किन्तु धड़ न होने से कुछ कर्म नहीं कर सकता; दूसरे में केवल धड़ है वह विचार नहीं कर सकता है । यही स्थिति दोनों भाइयों मधु-कैटभ (राग-द्वेष) की यहाँ दिखाई गई है, जब तक ये नष्ट नहीं होते, जीव को भटकाते ही रहते हैं । अतः इनसे मुक्ति के लिए माँ पराम्बा भगवती के चरणों में समर्पित होना चाहिए । जीवन का प्रथम भाग शैशव का होता है, जो सर्वथा राग-द्वेष रहित होता है । इसी कारण बालक सबको प्रिय होता है । साधक को विशेषतः कृष्णामयी माँ के

भक्त को अपना जीवन निश्छल प्रेममय बनाना चाहिए तभी तो प्रेम-नगर में स्थान मिलेगा ।

आइए हम सब प्रेम से मिलकर गाये—

प्रेम नगर में जाना है ।

जो शीश तली पर धर न सके, वह प्रेम गली में आये क्यों ?

जिसे प्रेम नगर में जाना है, वह जग में चित्त भरमाये क्यों ?

तुझे काम-क्रोध से बचना है, यह माया की सब रचना है ।

जो मन विषयों से मोड़े नहीं, वह भक्ति का ढोंग रचाये क्यों ?

जो प्रेम नगर में रहते हैं, उन्हें लोग बावरा कहते हैं ।

जो ताने जग के सह न सके, वह प्रीतम से नैन मिलाये क्यों ?

जो प्रकाश प्रेम का पा न सके, वह इष्टदेव अपनाएँ क्यों ?



मध्यम चरित्र

द्वितीयोऽध्यायः

द्वितीय-चरित्र-प्रथम चरित्र की भाँति द्वितीय चरित्र भी आख्यान द्वारा प्रतिपादित किया गया है। श्रोता की श्रद्धा से द्रवित होकर बिना पूछे ही आगे का वर्णन किया गया है; यही गुरु-कृपा है-शास्त्र-संकेत है-

ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवोः दीन वत्सलाः ।

दीन वत्सल गुरुजनों को स्नेही शिष्यों के लिए तात्त्विक उपदेश कहना ही चाहिए। क्योंकि-

गूढं तत्त्वं न साधु दुरावहि । आरत अधिकारी जँहा पावंहि ।

इस सिद्धान्त से इसमें गुरु की अहेतु की कृपा ही कारण है ।

मध्यम चरित्र के द्वितीय अध्याय की कथा से पूर्व माँ का ध्यान, और इसके विनियोग पर विचार कर लेना आवश्यक है ।

‘ध्यान-विनियोग-कथा’

ध्यानम्

ॐ अक्षस्रक् परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकाम्,
दण्डं शक्तिर्मसिं च चर्म जलजं घण्टा सुरा भाजनम् ।

शूलं पाश सुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननाम्;
सेवे सैरिभर्मदिनीमिह महालक्ष्मीं सरोज स्थिताम् ॥

कमलासन पर विराजमान, प्रसन्न मुख मुद्रा से सुशोभित, महिषासुर-मर्दिनी, भगवती महालक्ष्मी माँ को मैं प्रणाम करता हूँ, जो अपने हाथों में अक्षमाला, फरसा, गदा, बाण, बज्र, धनुष, कुण्डिका, दण्ड, शक्ति, खड्ग, ढाल, शङ्ख, घण्टा, मधु पात्र, शूल, पाश और चक्र धारण करती है ।

विनियोग

ॐ मध्यम चरित्रस्य विष्णु ऋषि, महालक्ष्मी देवता,

उष्णिक् छन्दः, शाकम्भरी शक्ति, दुर्गा बीजम्, वायुस्तत्वम्, यजुर्वेदः स्वरूपम्, श्री महालक्ष्मी प्रीत्यर्थं मध्यम चरित्र जापे विनियोगः ।

इस चरित्र के ऋषि विष्णु हैं, जैसे ब्रह्मा जी सृष्टि के रचयिता हैं, वैसे ही श्रीविष्णु भगवान् सृष्टि के पोषण कर्ता हैं। ब्रह्मा जी वेद-शास्त्र के प्रवर्तक हैं। जब समाज में वेद-शास्त्र पर घात होता है तब वह पालनीय शक्ति कैसे रक्षा करती है ? इस बात को आप भली भाँति सुन चुके हैं। जब समाज में उदण्ड, उच्छृंखल, स्वेच्छाचारी दुष्टों का साम्राज्य बढ़ने लगता है, दैवी गुणों का ह्रास होने लगता है; तब किस प्रकार वह पालन-पोषणीया शक्ति समाज की रक्षा करती हैं यह कथा अब सुनाई जायेगी। इस चरित्र के देवता भगवान् की इच्छा शक्ति महालक्ष्मी हैं लक्ष्मी शब्द के कई अर्थ होने हैं—श्री, विजय, विभूति (ऐश्वर्य), दीप्ति, कान्त, नीति, शोभा। जीवन में ये सभी चीजें प्रत्येक के लिए आवश्यक है। ये कैसे मिले ? इस युक्ति को इस चरित्र में समझाया गया है। इसमें उष्णिक् छन्द है, शाकम्भरी शक्ति है। इसमें भक्तों को याद दिलाई गई है कि जब समाज में घोर दैत्यों का साम्राज्य आ गया था, तो पराम्बा ने किस प्रकार शाकम्भरी का वेश धारण कर उनका संहार किया था। यह कथा आप देवी भागवत में पढ़ें। यहाँ केवल उनकी करुणा के लिए संकेत है।

सम्पूर्ण दुर्ग (क्लेशों) को नष्ट करने वाली माँ दुर्गा इसका बीज है, वायु तत्व है और यजुर्वेद इसका स्वरूप है इन सबका स्मरण कर—नाम लेकर हम उनके प्रति कृतज्ञ होते हैं; और उन्हें नमस्कार करते हैं। जिन्होंने हमें यह चरित्र प्रदान किया है। इन भगवती के चरणों में प्रणत होकर महर्षि मेधा जी कहते हैं :-

एक बार देवासुर संग्राम में देवता लोग हार गये । तभी सभी देवता ब्रह्मा जी को साथ लेकर भगवान् विष्णु और शिवजी के पास गये और विस्तार से अपनी व्यथा सुनाई । यह सुनकर दोनों देवों ने क्रोध व्यक्त किया, जिससे विष्णु जी के मुख से एक महान् दिव्य तेज प्रकट हुआ । इसी प्रकार ब्रह्मा जी, शंकर जी, इन्द्र; वरुणादि देवताओं के शरीरों से भी एक-एक तेज निकला और वे सब तेज मिलकर जाज्वल्यमान पर्वत सा एक तेजपुञ्ज रूप में देवताओं को दिखाई दिया । फिर वही विशाल तेज-पुञ्ज एक नारी के रूप में परिणत हो गया ।

शिवजी के तेज से देवी का मुख, यमराज के तेज से देवी के सिर के केश, विष्णु तेज से उनकी भुजायें, चन्द्र तेज से दोनों स्तन, इन्द्र तेज से कटि, वरुण तेज से जङ्गा, पृथ्वी तेज से नितम्ब, ब्रह्मा तेज से चरण, सूर्य तेज से अंगुलियाँ, वसुओं के तेज से हाथ की अंगुलियाँ, कुबेर के तेज से नासिका, प्रजापति के तेज से दाँत, अग्नि के तेज से त्रिनेत्र, सन्ध्या भृकुटि और वायु के तेज से कान प्रकट हो गये । फिर उस महाशक्ति को सभी देवताओं ने अपने-अपने विशेष आयुद्ध एवं आमूषण प्रदान किये । अब देवीजी समस्त आयुधों और आभूषणों से युक्त हो गई । तब क्षीर-सागर ने भी दिव्य हार, दो दिव्य वस्त्र, चूड़ामणि, दो कुण्डल, कड़े, उज्ज्वल अर्द्ध चन्द्र, बाजूबन्द, नूपुर, गले की हँसली और रत्न जटित अंगूठियाँ प्रदान की ।

विश्वकर्मा ने फरसा और कवच दिया और सुन्दर कमलों की माला पहनाई । उसी समय पर्वतराज हिमालय ने उन्हें अपरिमित रत्न और सवारी के लिए सिंह प्रदान किया । अब सुसज्जित होकर उस महाशक्ति ने ऐसा अट्टहास किया, जिससे आकाश निनादित हो उठा, ब्रह्माण्ड काँप उठे, धरा डोलने लगी और देवता प्रसन्न होकर जय-जयकार करने लगे ।

युद्ध की ललकार सुनकर दैत्यराज महीषासुर अपने बलिष्ठ

चिक्षुर, चामर, दुर्मुख, दुर्घर्ष आदि प्रमुख सेनापतियों तथा असंख्य वीरों की सेना सहित सुसज्जित होकर युद्ध के लिए गर्जना करता हुआ सामने उपस्थित हो गया। बड़ा भयंकर लोम-हर्षक युद्ध हुआ। दानवी सेना की अपरिमितता देख पराम्बा भगवती ने अपनी श्वांसी से असंख्य गण पैदा कर दिये। जिन्होंने समरांगण में दैत्यों की सेना को ध्वंस कर दिया। युद्ध के अन्त में महिषासुर की सब सेना नष्ट हो गई। देवता बड़े प्रसन्न होकर माँ भगवती पराम्बा पर पुष्प-वर्षा करने लगे।

उद्धार करो जगदम्बे, तुम्हारी शरण पड़े।

भव पार करो माँ जगदम्बे, तुम्हारी शरण पड़े।

कैसे तेरा नाम रटाये, कैसे तुमसे लगन लगाये

हृदय जगा दो ज्ञान, तुम्हारी शरण पड़े।

ऐसी अंतर ज्योति जगाना, हम दीनन को शरण लगाना

हे करुणाकारिणी माँ जगदम्बे, तुम्हारी शरण पड़े।

अब इस कथा पर विचार करना समीचीन है। हमारे अन्तःकरण में सत्य, क्षमा, करुणा, उदारता आदि दैवी गुण सहज विद्यमान हैं, किन्तु विषयों के चिन्तन से उन विषयों में राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मोह आ जाते हैं। यह बात आप पहले अध्याय में सुन चुके हैं कि दैवी गुण हमारे भीतर सहज ही हैं किन्तु आसुरी भाव बाहर से आते हैं। आसुरी भावों का यह लक्षण है कि वे दैवी गुणों पर आक्रमण कर सारे शरीर पर अपना आधिपत्य जमा लेते हैं। यह बात दैनिक व्यवहार में अनुभूत है। हमारी इन्द्रियों में अलग-अलग देवता विराजमान हैं। जैसे बुद्धि के देवता ब्रह्मा जी, मन के चन्द्रमा, चित्त के वासुदेव, अहंकार के रुद्र, नासिका के अश्विनी कुमार, आँखों के सूर्य, मुख के अग्निदेव, जिह्वा के वरुणदेव, कान के दिग्देवता, पैर के विष्णु, हाथ के इन्द्र, मूत्रेन्द्रिय के प्रजापति और गुदेन्द्रिय के यमराज हैं। ये देवता अपनी-अपनी इन्द्रियों में समाविष्ट होकर

उनका पालन करते रहते हैं। यही अधि-देवमण्डल उनका संचालक भी है।

वस्तु का बोध आधिभौतिक, आध्यात्मिक तथा आधि-दैविक तीनों प्रकार से होता है। जैसे हमारे सामने रक्खा हुआ एक कमल का पुष्प आधिभौतिक है; क्योंकि उसकी गन्ध पृथ्वी नासिका के द्वारा ग्रहण की जाती है, स्वाद—जल-जिह्वा द्वारा आस्वादित होता है। तेज उसका रंग सूर्य तत्व आंखों से ग्राह्य होता है, उसका स्पर्श वायु-तत्व त्वचा से अनुभूत किया जाता है और शब्द आकाश तत्व जो कान से श्रवण किया जाता है। इस प्रकार आपने देखा कि एक फूल में पाँचों महाभूत हैं और उन पाँचों को ग्रहण करने के लिए अलग-अलग इन्द्रियाँ हैं, वे इन्द्रियाँ ही आध्यात्मिक कहलाती हैं। अब इन आध्यात्मिक इन्द्रियों से आधिदेवताओं की सहायता से आधिभौतिक (दैहिक) वस्तुओं को ग्रहण किया जाता है। प्रत्येक वस्तु के ग्रहण करने की यही विधि है, किन्तु इन तीनों में चैतन्य पुरुष एक है—

योऽध्यात्मिको पुरुषः सोऽसावेवाधिदैविकः ।

यस्तत्रोभय विच्छेद पुरुषो ह्याधिभौतिकः ।

श्रीमद् भाग०/२/१०/८

अर्थात् आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तीनों में चैतन्य एक है। तीनों मिलकर ही ज्ञान है। जब आँख फूल को देखना चाहती है, तो आँख के देवता (सूर्य) प्रकाश देखकर फूल का ज्ञान करा देते हैं। यह सामान्य क्रम चलता रहता है। जब सभी इन्द्रियों के द्वारा या किसी एक भी इन्द्रिय के द्वारा शास्त्र विरुद्ध आचरण होने लगता है तो यह देव मण्डल आसुरी वृत्ति से—दूषित भावों से त्रस्त हो जाता है और इन्द्रियों के पालन में असमर्थ हो जाता है। इसलिए जीवन में शास्त्रानुसार सदाचार, शुभ आचरण और सत्कर्म आवश्यक है। जब इन्द्रियों पर आसुरी भाव आ जाते हैं, तब दैवी शक्ति समाप्त होने लगती है। इसका

प्रबल प्रमाण रावण था जिसने तप के द्वारा अनेक दैविक शक्तियों के वरदान प्राप्त किये थे किन्तु उसके दुराचारी हो जाने पर सभी शक्तियाँ वापिस चली गई और श्रीराम के साथ युद्ध में वे समस्त शक्तियाँ निष्फल हो गई थीं ।

यह अन्तःकरण का भाव-युद्ध आत्म निरीक्षण से ही ज्ञात होता है अन्यथा व्यक्ति प्रायः दूसरों के युद्ध तथा दूसरों के दोषों को देखना चाहता है । जब दैवी गुणों का ह्रास होता है, तब भगवान् की शरण ग्रहण की जाती है; काम-क्रोध आदि विकार आते ही सारे शरीर को प्रभावित करते हैं । सत्संग तथा कण्ठस्थ की गई गीता-रामायण उस समय काम नहीं आती है; यही आसुरी प्रबलता का दृष्टान्त है ।

इस प्रज्ञा में महिषासुर अस्मिता अभिमान का रूप है । अहङ्कार—पद, रूप, धन, विद्या, बल तथा अधिकार का होता है, जो हजारों सद्गुणों को दबाने वाला होता है, सहसा आई बाढ़ की तरह ध्वंस लीला करता है—तभी तो समस्त देवों को परास्त कर महिषासुर स्वयं इन्द्र वन बैठा । अहंकार सभी दैवी गुणों को पराभूत कर स्वयं ऐश्वर्य मद-ग्रस्त हो जाता है । तब हमारी इन्द्रियों में बैठे देवता इन्द्रियों से अशास्त्रीय मनमाने अभद्र व्यवहार देखकर पलायन कर जाते हैं । साधक वही है जो ऐसी अवस्था में आत्म निरीक्षण कर सके ।

अब सभी देवताओं ने एकत्रित होकर अपने-अपने तेज मिलाकर एक महाशक्ति प्रकट की । उसे सभी देवों ने आयुधों तथा आभूषणों से अलंकृत किया, जिसने अपने श्वांसी के द्वारा सृजित गणों के द्वारा पहले महिषासुर के सैन्य बल को नष्ट किया । इसका अर्थ हमें 'संघे शक्ति' के सूत्र से चिर स्मरण कराये रखना है । घर परिवार से लेकर विश्व के विशाल रंगमंच तक संगठन-शक्ति का अपना महत्वपूर्ण स्थान है । अनेक दुर्बल मिलकर असम्भव को सम्भव कर दिखाते हैं । कपोतराज चित्र

श्रीव की कथा में दोनों ही तथ्य विद्यमान हैं ।

एक बार कपोतराज सपरिवार गगन से उड़ता हुआ देशान्तर जा रहा था । वन के मार्ग में व्याध के द्वारा तण्डुल विकीर्ण करके जाल बिछाया गया था । जिह्वा की लोलुपता और भूख की व्याकुलता से पारिवारिक कपोतराज के बार-बार मना करने पर भी उन चावलों के दानों पर टूट पड़े और जाल में बंध कर पश्चाताप करते हुए एक दूसरे को दोषारोपित करने लगे । पुनः कपोतराज ने समझाया, अब दूसरी भूल करके अपने प्राणों को सङ्कट में मत डालो । सब एक साथ जोर लगा कर उड़ चलो, फिर क्या था वृद्ध के अनुशासन और उनकी प्रेरणा से जाल सहित उड़ चले । कपोतराज उन सबको अपने मित्र हिरण्यक भूषकराज के पास ले गया । जहाँ उसके जाल काटने पर वे सब मुक्त हुए ।

इस आख्यायिका में बिना खेतों के निर्जन वन में चावलों का होना भय की आशंका का द्योतक है, कपोतराज—गुरु के उपदेश को अनसुना करने का फल सब का बंध जाना है । इन्द्रिय-दासता और अशास्त्रीय व्यवहार का दुष्परिणाम मृत्यु को निमंत्रण है । गुरु की करुणा से तथा स्वयं संगठन से ही पुनर्जीवन प्राप्ति सम्भव है । कोमल कमल बाल के विसन्तु तथा जीर्ण शीर्ण घास को बँट कर रस्सी बना लेने पर मदोन्मत्त हाथी को बांध लिया जाता है । 'संघ में शक्ति' का इससे बढ़कर दूसरा दृष्टान्त क्या हो सकता है ? आप लोग तो सब परिचित ही हैं कि भारतीयों ने संघ शक्ति से ही स्वतन्त्रता प्राप्त की थी ।

फिर भी न जाने क्यों ? हम अपनी इन्द्रियों को शक्तियों को यों ही व्यर्थ नष्ट करते रहते हैं, जिसे सञ्चित करके महान् शक्ति अर्जित की जा सकती है । प्राचीन महर्षियों में यही विशेषता थी । यहीं बैठे स्वर्ग की बातें जान लेते थे । महर्षि वशिष्ठ जी ने दिलीप से कहा—“स्वर्ग की कामधेनु का तुम से अपमान हो गया है, जिसके

कारण पुत्र नहीं हुआ है; अतः नन्दिनी की सेवा करो ।” यह जादू मन की सङ्कल्प शक्ति का है । मन में बहुत शक्ति है किन्तु व्यर्थ-चिन्तन से नष्ट होतो रहती है ।

ऐसे ही प्रत्येक इन्द्रियों में शक्ति है, उसे बचाओ, सुरक्षित रखो, समय पर वही महाशक्ति का काम दे सकती है और अहंकार की सारी कुप्रवृत्तियाँ नष्ट कर सकती हैं । ‘समस्त सेना ध्वंस कर डाली गई ।’ महाशक्ति के निश्वास से निकले हुए गण ही तो देवी जी की सेना बन गये । उन्होंने ही महिषासुर की सेना का संहार किया—

निश्वासान् मुमुन्ये यांश्च युध्यमाना रणेऽद्रम्बिका ।

त एव सद्य सम्भूता गणाः शत सहस्रशः ॥२/५२-५३

यही गण मन की संकल्प शक्ति से प्रकट होते हैं । दृढ़ संकल्प में बहुत शक्ति होती है । शुक्ल यजुर्वेद के प्रथम अध्याय में ‘शिव-संकल्पमस्तु’ के छः मंत्र हैं । उन्हें ध्यान से पढ़ने पर मन का रहस्य व्यक्त हो जाता है । जब सारी सेना नष्ट हो जाती है; तब राजा भी अकेला लड़ने में असमर्थ हो जाता है । हमारे आसुरी भावों में जो कुप्रवृत्तियाँ उपद्रव करती हैं, उन्हें ईश्वराराधन, दृढ़ वैराग्य, भक्तिभाव की पराकाष्ठा और दृढ़ संकल्प के द्वारा नष्ट किया जा सकता है । यही द्वितीय अध्याय का सारांश है ।

‘शुभं - भूयात्’

हे मात भवानो जग जननी, संकट हरणी मन भरने दो ।

हम सब माँ तेरे बालक हैं, हमें चरण तले निज रहने दो ॥

देव पड़े जब विपदा में, तब मिलकर शरण तेरी आये ।

चढ़ सिंह पीठ रण में गर्जो, फिर रूप वही दरसाने दो ॥



तृतीयोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ उद्यद्भानुसहस्र कान्तिमरुण क्षौमां शिरोमालिकाम्,
रक्तालिप्तपयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वरम् ।

हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्वक्त्रारविन्द श्रियं,
देवी बद्धहिमांशु रत्नमुकुटां वन्देऽरविन्द स्थिताम् ।

उदयकालीन सहस्रों सूर्य की कान्ति के समान श्री अङ्गों से कान्तिमान, रक्तिम वर्ण, रेशमी साड़ी से सुशोभित, गले में मुण्डों की माला से अलंकृत, लाल रंग के चन्दन से चर्चितस्तन शोभिता, कमल रूपी करों में जप माला, विद्या, अभय तथा वर मुद्रा धारण किए हुए तीन नेत्रों से कमल मुख की शोभा वर्द्धिता, मस्तक पर चन्द्रमा सहित मणि माणिक्यादि रत्न-जटित-मुकुट धारिता, कमलासन विराजिता माँ जगम्दबे को मैं प्रणाम करता हूँ ।

महात्मा मेधा ऋषि ने पराम्बा को प्रणाम करके कहा—
हे राजन् ! महिषासुर की सेना के समाप्त होने के पश्चात् सेना-
नायक क्रमशः माँ से युद्ध करने के लिए आगे बढ़े । 'दम्भाहंकार
संयुक्ता' की उक्ति के अनुसार अपने को बहुत बड़ा वीर समझ कर
लड़ने लगे । माँ ने चिक्षुर का संहार किया । चामर को सिंह ने
मार दिया । दुर्मुख और दुर्घर्ष भी दोनों माँ की तीक्ष्ण कृपाण से
मारे गये । यह देखते ही अपने को असहाय सा समझ कर जोर-
जोर से गर्जता हुआ महिषासुर माँ के सामने अस्त्र-शस्त्र बरसाने
लगा ।

तब माँ ने कहा—

गर्ज गर्ज क्षणं मूढः, मधु यावत्पिबाभ्यहम् ।

मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः ॥ ३/३८

अरे मूर्ख ! जब तक मैं मधुपान करती हूँ, तब तक क्षण भर

के लिए गर्ज ले । यहीं मेरे हाथ से तेरो मृत्यु हो जाने पर शीघ्र ही देवता भी गर्जना करेंगे ।

माँ ने मधु पान कर उससे युद्ध करना प्रारंभ कर दिया । युद्ध में वह दैत्य कभी भैंसा, कभी सिंह, कभी हाथी का रूप धारण करके लड़ रहा था । माँ ने भयंकर युद्ध किया और उसे पैर से दबाया, जिससे रूपान्तर न कर सके, किन्तु पैरों से आधे शरीर से निकलकर रूप बदल कर भागने लगा । तभी माँ ने अपनी कठिन कृपाण से उसका शिरश्छेदन कर दिया ।

पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेनैनमताडयत्

ततः सोऽपि पदाऽऽक्रान्तस्तथा निज मुखात्ततः ।

अर्धं निष्क्रान्त एवासीद् देव्या वीर्येण संवृत ॥

अर्धं निष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महासुरः ।

तथा महासिना देव्या शिरश्छित्त्वा निपातितः ॥

ततो हा हा कृतं सर्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत् ॥ ३/४०-४३

अब इस पर विचार करते हैं—महिषासुर - अस्मिता देहाभिमान है; इसकी सेना कुप्रवृत्तियाँ हैं, सेनानायक रूप विद्या, धन, अधिकार है । व्यक्ति इन्हीं चार का अभिमान करता है । इन्हीं में दुर्धर्ष—दूसरों को पीड़ित करना, दुर्मुख—दूसरों को अप - वचन कहना है । जब परा-विद्या की कृपा से साधक में यह निश्चय हो जाता है कि; जीवन पानी के बुलबुले के समान क्षण भंगुर है—

मत कर तू अभिमान, जगत में दो दिन का मेहमान

हिरणाकश्यपु सम वरदानी, रहे न रावण से अभिमानी ।

अर्थात् जिस रूप, विद्या, धन, अधिकार को लेकर अभिमान किया जाता है ये तो मिथ्या स्वप्नवत है । यह निश्चय ही बाध कहलाता है और यही वध शब्द का भाव है—वध एव बाधा । अब जब मिले हुए पदार्थ मिथ्या ही हैं, आने जाने वाले ही हैं, घटने-मिटने छूटने वाले हैं, तब भला उनके मिलने पर इतराने

का क्या प्रश्न है ? भक्त प्रवर प्रह्लाद ने नृसिंह भगवान की स्तुति में अपने पिता जी के अभिमान को दर्शाया—

दृष्टामया दिवि विभोऽखिल धिष्यवाना पमायुः श्रियो
विभव इच्छति याञ्जनोऽयम् । येऽस्मत्पितु कुपितहास विजृम्भित
भूविस्फूर्जितेन लुलिताः स तु ते निरस्तः । तस्मादमूस्तनुभृता -
महमाशिषो ज्ञ आयु श्रियं विभवमैन्द्रियमाविरिञ्चात् । नेच्छामि ते
विलुलितानुरुविक्रमेण कालात्मनोपनय मां निज मृत्यपाशम् ।

भाग० ७/६ २३-२३

हे प्रभु ! मनुष्य प्रायः जिस आयु, धन, वैभव आदि की चाह करता है वह सब मैंने अपने पिता में देखा है, इनकी भृकुटि को देवाधिदेव, दिग्पाल देखा करते थे—दैत्यराज कब क्या संकेत करें ? तत्काल उस आदेश का पालन करें, आज वही सब तमाशा क्षणमात्र में समाप्त हो गया है ।

इस प्रकार दृष्टान्तों से तथा प्रत्यक्ष परिवर्तनशीलता को देखकर साधक के जीवन में क्रमशः कुप्रवृत्तियों की निवृत्ति, समाज के प्रति कठोर व्यवहार तो समाप्त हो जाता है; किन्तु देहाभिमान तो रह ही जाता है । इसके नाश के लिए पराम्बा मधु ग्रहण करती हैं । मधु शब्द शुभ कर्मों का फल तथा सुख के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है, दिव्य आत्मज्ञान (अमृत) ही मधु है । इसी से यहाँ 'मधु यावत् पिवास्यहम्' कहा गया है । देखिए—

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः ।

माध्वीर्नः सन्तोषधीः ॥ ऋग्वेद मं० १ सूक्त ६/१

इस ज्ञान रूप अमृत का ग्रहण करके ही अस्मिता (अस्मि-इत्यस्य भाव तत् अहंकार) रूप महिषासुर से लड़ने का संकेत रहस्यपूर्ण है । महिषासुर के रूप परिवर्तन का भी बड़ा मार्मिक रहस्य है । यह बात आप लाग आसाना से समझ गये होंगे कि अहंकार कितने वेश बदलता है और दैवी गुणों को नष्ट करना चाहता है । पहले यदि धनो में धन होने का अभिमान होता है,

तो धन चले जाने से त्यागी होने का अभिमान भी उससे कम नहीं होता । भगवान् ने तो 'अहंकार विमूढात्मा' से इसी को स्पष्ट किया है । यहाँ तक कि त्यागी का अभिमान भी जब घटने लगता है तब निरभिमानी का वेश बनाकर अभिमान जिन्दा रहना चाहता है, उसको दबाने का भाव भी बहुत अच्छा है । क्योंकि जब-जब इसको दम्भ की सहायता से दबाया जाता है, तब-तब जितना अंश शेष रहता है, उतना ही वेश बदल कर दूसरों को दबाना चाहता है । इसके बाध या बध का उपाय कटिन कृपाण ही है । इसको गीता में—

‘असङ्ग शस्त्रेण दृढेन छित्वा’ से इसके बध का स्पष्ट साधन कहा गया है । श्री मद्भागवत में इसके बहुत प्रयोग हैं—

एवं गुरुपासनयैक भक्त्या, विद्या कुठारेण शितेन धीर ।

विवृश्चजीवाशय अप्रमत्त, सम्पद्य चात्मानमथत्यजास्त्रम् ॥

भाग० ११/१२/२४

पराभक्ति (परा विद्या) द्वारा ज्ञान-कृपाण को गुरुपासना की शाण से तीक्ष्ण धार करके जीव-भाव (अहंकार) को काटना है । पराम्बा की चरण-शरण लिए बिना यह अहंकार नहीं मारा जा सकता । इसके द्वारा ही जीव ईश्वर अंश होते हुये भी दुःखी हो रहा है ।

इस दार्शनिकता को सहज समझने के लिए एक आख्यान प्रस्तुत है । एक राजा अपने दरबार में अपनी रानी तथा मंत्रियों सहित राज सिंहासन पर आरुढ़ था । राजा ने कहा—देखो महारानी ! मेरे राज्य में सभी लोग मेरी ही आज्ञा से कार्य करते हैं । एक भी व्यक्ति मेरी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता । मेरे राज्य में देवता भी मेरी आज्ञा का पालन कर रहे हैं । रानी ने व्यंग्मात्मक मुसकान बिखेर दी । राजा ने निश्चय कराने के लिए मंत्री को आदेश दिया—जो कोई व्यक्ति जा रहा हो, उसे मेरे पास लाओ और पूछो—मेरी आज्ञा में हैं या नहीं,

रानी के संदेह को दूर करना है। आदेश का पालन करते हुए मंत्री ने पाँच अपरिचित व्यक्तियों को लाकर राजा के समक्ष उपस्थित किया। राजा ने उनसे वही प्रश्न पूछा—तुम लोग मेरी आज्ञा से ही सभी कार्य व्यवहार करते हो या नहीं; निस्संकोच कहिए। उन पाँचों में से एक ने भी राजाज्ञा के साथ सहमति नहीं दी—वरन् किसी ने अपने पति को, किसी ने गुरुदेव को, किसी ने अपने मालिक की आज्ञा में चलने को कहा। तब राजा ने उन्हें बाहर निकलवा कर मंत्री से कहा—तुम और अधिक ऐसे लोगों को लाओ, जो मेरी आज्ञा में हों। सुनकर मंत्री अपनी दस पत्नियों को ले आया। पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया—‘हमें राजा की आज्ञा से क्या प्रयोजन ! अपने पति की आज्ञा से चलना है। तब मंत्री से पूछा—मंत्री ने भी मना कर दिया। रानी से पूछने पर उसने कहा—‘महाराज ! मैं तो तुम्हारे कारण ही अशान्त रहती हूँ। तुम्हारे बिना मेरा जीवन शान्त सुखमय रहता है, क्योंकि तुम अपने आपको बिना मालिक के ही मालिक समझते हो। सभी जनता को घास देते हो।

आख्यान का राजा अहंकार है, रानी बुद्धि है, मन मंत्री है, दस इन्द्रियाँ दस पत्नियाँ और पाँच व्यक्ति पञ्च महाभूत हैं। यह तो सच ही है कि यह अहंकार बहुत ही प्रबल शत्रु है—

“अहङ्कार विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ।”

महामूर्ख अहंकार स्वयं अपने को कर्ता मान बैठता है, क्योंकि बुद्धि मूर्च्छित हो जाती है। इसी दुष्ट के मरने पर पराभक्ति प्राप्त होती है। अहंकार के सम्बन्ध में महामुनि विद्यारण्य जी ने अपनी अमर कृति ‘पञ्चदशी’ में इस प्रकार कहा है—

अहङ्कारः प्रभु सभ्याः विषया नर्तकी मतिः ।

ताल धारिण्यक्षणि साक्षी सर्वावभासकः ॥

अर्थात् राजा अहंकार है, विषय सभासद, बुद्धि नर्तकी है, इन्द्रियाँ वाद्य-वादिनी हैं और साक्षी आत्मा, प्रकाश देने वाला

दीपक है। इसी प्रकार हमारे शरीर में अन्तःकरण और इन्द्रियों की सभा लगी है। आत्मा साक्षी सबको प्रकाश दे रहा है।

योग योगेश्वर कृष्ण ने अहंकार की वीभत्सता एवं उससे मुक्ति का कितना सुन्दर सहज उपाय बताया हैं, उन्हीं के शब्दों में देखिए और आचरण कीजिए—

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।

विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्म भूयाय कल्पते ॥

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ।

समः सर्वेषु भूतेषु सदर्भात्किं लभते पराम् ॥

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ।

ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ।

गीता १८/५३-५५

अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध और परिग्रहादि दोषों के नाश होने पर पराभक्ति प्राप्त होती है, जिसमें कुछ चाह नहीं, कोई अन्य राह है नहीं। सभी प्राणियों के प्रति भगवद् भाव जागृत हो जाता है। तब इस भक्ति के द्वारा ही दिव्य ब्रह्मात्मैक्य बोध होता है।

दुर्गा-सप्तशती में मध्यम चरित्र जवानी का है। जवानी में ही अभिमान अपने पूर्ण यौवन पर होता है। इसके मद में हम अपने भगवान् को भी अन्यायी तक कहने में नहीं चूकते, जबकि भगवान् अपनी प्रिय सन्तान पर सदैव करुणा की वर्षा करते रहते हैं। भगवान् कहते हैं 'सब पर मोरिबराबरी दाया', केवल दया ही बराबर नहीं है, अपितु समस्त प्राणियों में मनुज अधिक प्रिय है, उनके कथन पर दृष्टिपात कीजिए—

सब मम प्रिय, सब मम उपजाये,

सबसे अधिक मनुज मोहि भाये ।

और इनका कृतज्ञ होना चाहिये। कुशल सूत्रधार की तरह

भगवान् अपने सभी पात्रों को उनकी योग्यतानुसार रूप, धन, विद्या, अधिकार आदि प्रदान करते हैं फिर इनका अभिमान ही क्या ? क्योंकि इनका हमारे साथ सम्बन्ध भी शाश्वत नहीं है । यौवन के साथ-साथ रूप ढल जायेगा, शरीर में झुर्रियाँ पड़ जायेगी, कटि झुक जायेगी, पैर थक जायेंगे, कल का सुन्दर आज कुरूप हो जायेगा । सिद्धार्थ को तो ऐसे वृद्ध को देखकर ही संसार से वैराग्य हो गया था । यहाँ सब कुछ मिलता है, परन्तु क्या किसी दुकान पर बिना बुढ़ापे की जवानी मिलती है, बिना रंज के सुख मिलेगा या बिना मरण के जीवन मिल सकता है ? है कोई ऐसी दुकान, जहाँ सदा मुस्कान ही मिले थकान न हो । विचारक निश्चित ही जानते हैं कि ये सब किसी बाजार में कहीं भी नहीं मिल सकते । प्यारे ! अभिमान तो दैवी गुणों का ह्रास करके आसुरी-भावों को भर देता है । कपाट बन्द करने से एकान्त नहीं होता, ओठ बन्द कर लेने से मौन नहीं होता, क्योंकि तब मनोराज्य और भी अधिक प्रबल होने लगता है भीड़ में होने पर भी मानव एकान्त में हो सकता है ।

थोड़ा विचार कीजिए । आप सब लोग जो यहाँ कथा सुन रहे हैं वे सब लोग एकान्त में ही हैं क्योंकि सब की वृत्ति केवल कथा-श्रवण में ही लगी है । एकान्तवास और मौन का अभिमान व्यर्थ है । रूप; धन, विद्या, अधिकार ये सब आपको भगवान् से मिले हैं । इनका सदुपयोग कीजिए तो जीवन में सफलता मिलेगी और यदि अभिमान करके दुरुपयोग किया तो विफलता और कष्ट ही मिलेगा । मानस में धनुष-भंग के प्रकरण में जो दोहा है कि अभिमानी राजाओं ने धनुष तोड़ना चाहा, तो टूटा तो नहीं वरन् और भारी होता गया । इसका भाव यह है कि जब हम धर्मानुष्ठान द्वारा अभिमान को मिटाना चाहते हैं तो धर्मानुष्ठान करने का एक और अभिमान बढ़ जाता है ।

धन, परिवार; उपलब्ध सुविधायें एवं पदार्थादि दुख नहीं

देते, दुःख देता है उनका अभिमान । श्रीमद्भागवत के अन्तर्गत शमीक ऋषि के पुत्र ने जब राजा को शाप दिया, तो ऋषि को दुःख हुआ कि मैंने इस अपरिपक्व बुद्धि वाले को इतना सामर्थ्य देकर ठीक नहीं किया; अन्यथा अर्हता से अधिक क्षमता वाला व्यक्ति उसका दुरुपयोग कर बैठेगा, जो समाज के लिये घातक होता है ।

दान देने वाले को यह भी देखना चाहिए कि दान लेने वाले में मेरे द्वारा दिये गये दान को पचाने की शक्ति भी है या नहीं; यह याचक, रोगी, शिष्य सभी पर समान रूप से चरित्रार्थ है । इन्द्र जब उसका कवच दान लेकर चलने लगा तो उसके पाँव जमीन से उठे नहीं; तो आकाश वाणी हुई—इतना बड़ा दान लिए जा रहे हो उसके बदले कुछ दिया क्यों नहीं ? तब इन्द्रदेव ने एक शक्ति दी, जिसका प्रयोग घटोत्कच्छ पर किया गया था ।

महाभारत के युद्ध के प्रारम्भ में दोनों सेनायें आमने सामने खड़ी हैं और भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को गीतोपदेश दे रहे थे; तब दुर्योधन ने भीष्म पितामह से कहा “देखिए, वह चरवाहा कृष्ण अर्जुन के कान भर रहा है; शीघ्र आक्रमण कर दीजिए । पितामह ने कहा—“भगवान् कान नहीं भर रहे हैं, वरन् अर्जुन को दिव्य-संदेश दे रहे हैं; जिसका एक शब्द भी जीवन में उतर जाये तो जीवन धन्य हो जाये परन्तु इस दिव्य-सन्देश के योग्य-पात्र एकमात्र अर्जुन ही है । जब तक श्री कृष्ण की इच्छा नहीं होती, तब तक मेरे चाहने पर भी युद्ध प्रारम्भ नहीं हो सकता । अरे ! यह युद्ध तो श्री कृष्ण का एक खेल तमाशा है । यदि उस दिव्य संदेश को सुन सको तो सुनो, अन्यथा चुपचाप खड़े रहो ।

मूढ़ भाव (तमोगुण) में मानव सोता है, रजोगुण से कर्म प्रवृत्त होता है सतागुण में भगवान् की ओर उन्मुख होता है तथा

निःशब्द अवस्था में शान्त हो जाता है । पहले सम्पूर्ण इन्द्रियों में बिखरी हुई शक्तियों को एकत्रित करो, तब ज्ञान की बातें समझ में आयेंगी । संकल्प में बहुत बड़ी शक्ति होती है किन्तु जब तक वह प्रकट नहीं होती, तब तक उसका लाभ नहीं मिल पाता है । अधिक उहात्मक कल्पनाओं में विचरण करने वालों का मन बिखर जाता है । कुछ देर तक मन को शान्त करके देखो, तो पता चलेगा, उसमें कितनी अपार शक्ति है ? जब हम इन्द्रियों से संयम से कार्य लेते हैं, तब उनकी शक्ति बढ़ती है । शान्त मनः स्थिति को ही स्थित प्रज्ञ कहते हैं । तभी सच्चे अर्थों में माँ की कृपा से ही अभिमान के महिषासुर का वध होता है । कुप्रवृत्तियों की दैत्य सेना हा हा ~~कार~~ करती हुई पलायन करती है । महर्षियों सहित इन्द्रियों के देवता माँ भगवतीकी स्तुति करने लगते हैं—

ॐ माँ की स्तुति ॐ

दरबार तुम्हारा देख लिया, माँ प्यार तुम्हारा देखेंगे ।
 अपना बनाकर तुमको देख लिया, आँखों में बसाकर देखेंगे ॥
 तेरे प्यार में लाखों भक्त लुटे, लुटकर ही उन्हें कुछ पाना है ।
 तेरे प्यार में जो मिट जाते हैं, वह हम भी नजारा देखेंगे ॥
 तेरे प्यार में क्या-क्या जादू है, अब तक तो कोई ना जान सका ।
 जो जान गया वह मान गया, माँ हम भी मनाकर देखेंगे ॥
 चरणों में तुम्हारे आ बैठा, हाथों का सहारा दे देना ।
 शरणागत को वरदान मिले, माँ हार बना कर देखेंगे ॥



चतुर्थोऽध्यायः

ॐ कालाभ्राभां कटाक्षैररि कुल भयदां, मौलिबद्धेन्दुरेखाम्,
 शंखं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तां त्रिनेत्राम् ।
 सिंह स्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीम्,
 ध्यायेद्दुर्गा जयाख्यां त्रिदश परिदतां सेवितां सिद्धिकामैः ॥

इच्छा-पूर्ति-हेतु सेवा में संलग्न पुरुषों तथा देवताओं से
 से घिरी हुई (जया नाम वाली) दुर्गा को नमस्कार है। काले
 मेघ की कान्ति के समान श्यामाङ्गा, कटाक्षों से शत्रु-समूह के
 लिए भय दायिनी, ललाट पर चन्द्र-धारिणी, हाथों में शङ्ख, चक्र,
 कृपाण और त्रिशूल धारिणी, त्रिनेत्रा, सिंह स्कन्धारूढ़ा, अपने तेज
 से तीनों लोकों को व्याप्त करने वाली माँ दुर्गे का ध्यान करना
 चाहिए।

इस अध्याय में स्तुति की गई है—‘स्तवनं स्तुतिः’ कर्ता में
 प्रत्यय का अर्थ है—अपनी भाषा में अपने भावों को अपने इष्ट-
 देव के सामने बड़े प्रेम से निवेदन करना। स्तूयतेऽनेनेति स्तोत्रम्,
 जो दूसरों की कृति पढ़े वह स्तोत्र है और जो अपने प्रियतम के
 प्रति कृतज्ञता अर्पित करते हुए कुछ मांगना हो, तो वह प्रार्थना
 कहलाती है। ये सभी भावों की गरिमा से परिपूर्ण होनी चाहिए।
 हृदय का स्नेह-प्रेम ही अहङ्कार को गला देता है। जैसे लाख -
 (चपड़ा) कठोर होती है, किन्तु अग्नि से सम्पर्कित होते ही पिघल
 जाती है, तब मुहर लगाई जाती है। तत्पश्चात् कपड़ा भले ही
 फट जाय, किन्तु मुहर नहीं मिटती है। वस्तुतः महत्त्व भी मुहर
 का है, वही प्रामाण्य आधार है। इसी प्रकार पिघले हृदय से
 अपने इष्टदेव के सामने उसके नाम रूप गुणों की मुहर लगानी
 चाहिए। यही स्तुति है—प्रियतम मिलन की तीव्र उत्कण्ठा,
 बेचैनी ही जीवन में रस लाती है—

मिलता है सच्चा सुख केवल,

जगदम्बे तुम्हारे चरणों में ।

चाहें मुझे अग्नि में जलना हो,
 चाहे काँटों में मुझे चलना हो ।
 चाहे छोड़ के देश निकलना हो,
 रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में ।
 चाहे संकट ने मुझे घेरा हो,
 चाहे चारों ओर अंधेरा हो ।
 पर मन ना मेरा डगमग हो,
 रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में ।
 ओठों पर तुम्हारा नाम रहे,
 तेरी याद सुबह और शाम रहे ।
 तेरी याद में आठों याम रहे,
 रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में ।

जब समस्त विकारों (निशाचरों से हीन) से रहित पवित्र हृदय दैवी गुणों से भर जाता है तभी स्तुति होती है । महिषासुर आदि दैत्यों के मारे जाने पर देवों द्वारा स्तुति की जाने का यही अर्थ है । स्तुति के भाव ये हैं—‘देव्या ययेति’ सभी देवों की शक्ति मिलकर एक महाशक्ति स्वरूपा-ऋषि-महात्माओं द्वारा वन्दिता जगदम्बा को हम बड़े प्रेम भाव से नमस्कार करते हैं । नमस्कार का अर्थ समर्पित होता है; आप हम लोगों का कल्याण करें । ‘यस्या प्रभावमतुलं’ वाणी से परे परम तत्त्व का प्रतिपादन करने में शेष जी तथा ब्रह्मादि देवता भी असमर्थ हैं अर्थात् ब्रह्मा बुद्धि के देवता हैं और परम तत्त्व बुद्धि से परे है । भगवान् शिव अहङ्कार के देवता हैं और परम तत्त्व अन्तःकरण का प्रकाशक है तो प्रकाश्य सभी इन्द्रियाँ तथा उन पर बैठे हुए देवता हैं; वे सभी प्रकाशक का वर्णन नहीं कर सकते —

चक्षुषः चक्षुः श्रोत्रस्य श्रोत्रम्’ वाला तत्त्व यहाँ प्रतिपाद्य है ।

ये आँखें तुम को क्या देखें, सब आँखें तुमसे रोशन हैं ।

विषय करण सुर जीव समेता । सकल एक ते एक सचेता ।
(मानस)

इसी परम तत्व के लिए यहाँ संकेत है ।

महिषासुर के मरने पर देवों ने माँ जगदम्बे की स्तुति की है, क्योंकि महिष-भैंसा और गधा दोनों किसी दूसरे की नहीं सुनना चाहते हैं, अपने में चोट लगने की चिन्ता नहीं, टूट जाये पर झुकेंगे नहीं । अतः इनके नष्ट होने पर ही दैवी गुण विकसित होते हैं तभी स्तुति होती है कि जो ऐसे असुर हैं उनके लिए आप दरिद्रता रूप से अनुभव की जाती है और जो सत्पुरुष श्रद्धालु हैं; उन्हें आप लक्ष्मी रूप में, बुद्धि रूप तथा लज्जा रूप से अनुभव में आती है—भाव यह है कि शक्ति तो एक ही है; किन्तु अपनी सद्भावना के अनुसार दर्शन होते हैं—

जाकी रही भावना जैसी । प्रभु मूरत देखी तिन तैसो ॥

(मानस)

सज्जनों को कुकर्म करने से लज्जा रूप होकर तुम्हीं बचाती हो और सत्कर्म करने के लिए सद्बुद्धि बनकर प्रेरित करती हो ॥ ५ ॥

इसी से आप अवर्णनीय हैं, वाणी, मन, से अतीत अगोचर हैं । आप ही जगत की कारण हैं, क्योंकि ब्रह्म तो उपादान कारण हो ही नहीं सकता । अतः माया रूप से तुम ही मूल कारण हो । यद्यपि त्रिगुणात्मिका रूप हो, तथापि गुणों के दोष से रहित हो, क्योंकि गुणों की साक्षी होने से सम्बन्ध नहीं है । सभी देवों की आप ही आश्रय हैं । आप आदि भूत अव्याकृता परा प्रकृति है ॥ ७ ॥ देवताओं की तृप्ति रूप स्वाहा तथा पितरों की तृप्ति रूप से स्वधा आप ही हैं ॥ ८ ॥

मुक्ति का साधन खोजने वाले, निर्दोष, पवित्र हृदय वाले जितेन्द्रिय, तत्वग्राही मुमुक्षु महात्माओं के लिए आप परा विद्या हैं ॥ ९ ॥ आप शब्द स्वरूपा हैं, पवित्र ऋक्-यजु एव उद्गमोथ

वाले सामवेद की आधार आप ही हैं। यहाँ स्तुति में प्रतिपाद्य तत्व की ओर संकेत है—“वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः” सभी वेदों का प्रतिपाद्य तत्व ‘अहं’ आत्मा ही है। आप ही त्रयी-तीनों वेद स्वरूपा एवं सर्व ऐश्वर्य सम्पन्ना हो तथा जगत पालन हेतु वार्ता- (खेती बाड़ी) आप ही हैं, त्रिताप (दैहिक, दैविक, भौतिक) विनाशिनी भी आप ही हैं ॥ १० ॥ सर्व-शास्त्र मर्मज्ञ के लिए आप ही धारणा-शक्ति मेधा हैं। आप अनासक्त होकर सभी का पालन करती हैं।

दुर्गा शब्द पारिभाषिक है—

मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञान रुपिणी ।

ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्य साक्षिणी ।

यस्या परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रतीतिता ।

तां दुर्गां दुर्ग मां देवीं दुराचार विधातिनीम् ।

नमामि भवभीतोऽहं संसारार्णव तारिणीम् ॥

देव्यर्थव शीर्ष २४-२५

इस संसार को सागः या समुद्र इसलिए कहा गया है कि इसमें अगाध अथाह जलराशि होने पर भी यह किसी प्यासे की प्यास नहीं बुझा सकता। यही दशा संसार की है, असंख्य सुख-सुविधा की सामग्री होते हुए भी किसी की प्यास की (अभिलाषाओं एवं कामनाओं की) तृप्ति नहीं हो सकती है। प्रत्येक पदार्थ पैदा होता है कुछ क्षणों के बाद समाप्त हो जाता है—“भवन्तीति भूतानि” ऐसा भव-संसार क्षार जल से युक्त ही नहीं अपितु विषय-विष से परिपूरित सागर है जिसमें मनोराज्य की उत्ताल तरङ्गें उद्वेलित होती रहती हैं। इस भवसागर को पार कराने वाली ब्रह्म विद्या ही है। इसी का नाम दुर्गा है—सभी मंत्रों में मातृका, मूल अक्षरों में, शब्दों में अर्थ रूप से, ज्ञान में चिन्मयातीता एवं शून्यों में उनकी साक्षीरूपा श्रेष्ठ देवी दुर्गा जी हैं। पापियों को दण्डित करने वाली, सज्जनों को तारने

वाली आप ही हैं। इसी दुर्गा देवी को यहाँ नौका बताया गया गया है। आप ही विष्णु प्रिया लक्ष्मी तथा शिव प्रिया गौरी हैं। अ. ४-११ ॥

मदिर-मदिर मुस्कानमयी चन्द्रानना पराम्बा पर भी महा-मूर्ख महीष को क्रोध आया। उस पापी का उद्धार करने के कारण ही उसी मुख को क्रोधावेश से कराल काल सम रौद्र करके उसका उद्धार कर दिया। आप अपनी करुणामयी प्रसन्नता से संसार का संरक्षण करती है, पालन करती है एवं क्रोधित होने पर दैत्यों का सर्वनाश कर देती है, यह भी आपकी करुणा ही है। १४ ॥ आपके कृपा-पात्र जन ही सम्मान, धन और यश पाते हैं, वे धन्य हैं। वस्तुतः भौतिक सम्पत्ति तथा तीनों एषणाओं की उपलब्धि नाशमान होने के कारण क्षणिक है। अतः उनकी प्राप्ति हो जाने पर भी सन्त-जन उन्हें धन्य नहीं कह सकते। भगवद्-भक्ति सम्पन्न पुरुष ही धन्य हैं—

सो कुल धन्य उमा सुन, जगत पूज्य सुपुनीत ।

श्री रघुवीर परायण जेहि, नर उपज विनीत ॥ मानस से स्पष्ट है

इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया है—

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था, वसुन्धरा पुण्यवती च तेन ।

अपार सेवित मुख सागरेऽस्मिन्, लीना परे ब्रह्मणि यस्य चेताः ॥

जो व्यक्ति अपार सुखों से सेवित इस संसार में अपने चित्त को ब्रह्म में लीन किये हुये हैं, ऐसे महापुरुषों से ही कुल पवित्र होता है, ऐसे पुत्र की सौभाग्यवती माता का जीवन सार्थक है, और उसी से यह वसुओं को धारण करने वाली वसुन्धरा-धरती माँ पुण्यवती है अतः ऐसे व्यक्ति ही धन्य हैं।

हे देवी ! आपकी कृपा प्राप्त सज्जन श्रद्धालु जन धर्माचरण करके स्वर्ग प्राप्त करते हैं। हे माँ दुर्गे ! स्मरण मात्र से सभी प्राणियों का दुःख हरण करने वाली आप ही हैं,

और स्वस्थचित्त से कृतज्ञता पूर्वक स्मरण करने वाले पुरुषों का सद्बुद्धि-देने वाली आप ही हैं। दया से आर्द्र-चित्त वाली सदेव अपने भक्तों का उपकार करने वाली उनके दुःख, दारिद्र्य एवं भयनाशिनी तुम ही हो। माँ के दो विशेषण बड़े मधुर एवं यथार्थ हैं—(१) करुणा पूरित नयना (२) सदाऽऽर्द्रचित्ता ।

अर्थात् अपने प्यारे पुत्र के लिये जिनके नेत्रों में सदा करुणा भरी रहती है और हृदय स्नेह से सदैव सिक्त (गीला) रहता है। भक्त और अभक्त दोनों के लिये माँ सदा करुणा ही बरसाती है, क्योंकि उनका क्रोध भी मुक्ति-प्रदायक है। १७ ॥
निर्वाण दायक क्रोध जाका (मानस)

हे देवि ! दुष्टों के दलन से जगत को सुख मिले और उन्हें स्वर्ग मिले; इसी उद्देश्य से आप उनका संहार करती हैं। यह भी आपकी करुणा ही है कि अस्त्र-शस्त्रों का उन पर प्रयोग करके उन्हें पवित्र करती हो, अन्यथा अपनी दृष्टिमात्र से भस्मीभूत कर सकती हों। १८ ।

हे माँ ! यह आपके दिव्य-मुख-दर्शन का ही पुण्य फल है जो आपकी तलवार की चमचमाहट तथा त्रिशूल की अनुपम प्रभा से उनकी आँखें नहीं फूटी। हे देवी ! दुष्टों की दुष्टता दूर करना और अनुपमेय बल तथा पराक्रम का उन्हें प्रदर्शन करा देना ही आपका उनसे युद्ध करने का प्रयोजन है।

हे वरदायिनी ! आपका पराक्रम अतुलनीय है, मनोहर अनिन्द्य रूप हैं। धन्य हैं आप, जिनके हृदय में करुणा और कृपा का अपार सागर तराङ्गयित है और युद्ध में दुष्टों के लिये दग्ध करने वाली अपार ज्वाला ज्वलित रहती है। ये दोनों बातें एक साथ आप में ही हैं। एक कुम्हार घड़े में भीतर हाथ लगाकर बाहर दूसरे हाथ से जोर से थपकी की चोट से ठोकता है जिससे घड़ा सुन्दर, सुघड़ एवं संस्कार युक्त बन जाता है। इसी प्रकार आप भी दोनों कार्य एक साथ ही करती हैं।

हे माँ ! शत्रुनाश करके आपने संसार की रक्षा की, दुष्टों को स्वर्ग में वास दिया, और हम लोगों को उनसे निर्भय बना दिया । आपको बारम्बार नमस्कार है । आप शूल से, तलवार से, घण्टा ध्वनि से, धनुष की टंकार से, चारों दिशाओं में हमारी रक्षा करें । २६ ।

इस प्रकार देवताओं ने पराम्बा की बड़े प्रेम से स्तुति की-
अब तुम्हारे हो चुके माँ, अब शरण में ले लो हमें ।
सर्वस्व अपना खो चुके हैं, माँ शरण में ले लो हमें ॥
जप-जोग ईश आराधना, तप नियम की जो साधना ।
सबसे विरक्त अब हो चुके हैं, माँ शरण में ले लो हमें ॥
निज बात पीड़ाओं से भरी, करुणार्द्र होकर तुमसे कही,
चरणों में गिरे, बहुत रो चुके हैं, माँ शरण में ले लो हमें ॥
माँ शरण में ले लो हमें ॥

पराम्बा ने देवों की स्तुति से प्रसन्न होकर वरदान माँगने को कहा । तब देवताओं ने कहा—माँ ! हमारा यही मनोरथ था कि संसार में आसुरी भाव नष्ट हो जायें । जब व्यष्टि या समष्टि में दैवि गुणों का ह्रास और आसुरी भावों का विकास हो जाता है । तब अम्युदय और निश्च्रेयस दोनों की हानि होती है । आपने कृपा करके विश्व का कल्याण किया है । अब जब—जब ऐसी संकटमयी अवस्था आवे तो हमारे स्मरण-मात्र से आप दर्शन देकर संकट दूर करें । यही अमीष्ट है ।

इन स्तोत्रों को जो पढ़ेंगे उन्हें सब प्रकार की सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति होगी, प्रसन्न होकर आप हमें यही वरदान दें । तथास्तु कहकर माँ जगदम्बे अन्तर्धान हो गई ।

जब कोई न हो तेरा, तब माँ की शरण ले लेना ॥ १

संसार के जीवों पर कभी, आशा न किया करना ।

जब कोई न हो तेरा, तब माँ का नाम लिया करना ॥ २

जीवन के सागर में तूफान भी आते हैं,
जो माँ के सहारे हैं वे ही बच पाते हैं।
वे आप ही आयेंगी, बस तुम याद किया करना ॥ ३

हे भक्त ! तू दुःख में न रो, माँ तुझ से दूर नहीं है,
भक्तों का दुखी होना, माता को मंजूर नहीं है ।

है भक्तों की रखवाली, तुम उनकी शरण लिया करना ॥ ४ ॥



पञ्चमोऽध्याय

ध्यानम्—ॐ घण्टाशूलहलानि शंख मूसले चक्रं धनुः सायकम्
हस्ताब्जैर्दधतीं धनान्तबिलसच्छीतांशु तुल्य प्रभाम् ।
गौरी देह समुद्भवां त्रिजगतामाधार भूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वती मनुभजे शुम्भादि दैत्यादिनीम् ॥

जिनके कर कमल घण्टा, शूल, हल, शङ्ख, मूसल, चक्र, धनुष और बाण से सुशोभित हैं, शरद कालीन दुग्ध धवल ज्योत्स्ना से ज्योतित चन्द्रमा के समान जिनकी मनोहर कान्ति है, जो तीनों लोकों की आधार हैं जो शुभ-निशुम्भादि दैत्य संहारिणी हैं, माँ गौरी-पार्वती के शरीर से जिनका प्राकट्य हुआ है उन महा सरस्वती देवी को मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ, आराधना करता हूँ ।

विनियोगः—ॐ अस्य श्री उत्तरचरित्रस्य रुद्र ऋषिः,
महासरस्वती देवता, अनुष्टुप्छन्द—भीमा शक्ति, भ्रामरी
बीजम्, सूर्यस्तत्त्वम्, सामवेद स्वरूपम् महासरस्वती प्रीत्यर्थं
उत्तर चरित्र पाठे निनियोगः ॥

यह उत्तर-तृतीय चरित्र है । जीव में राग-द्वेष, अस्मिता अविद्या, क्लेशों के कारण ही दुःख आता है । वह नित्य मुक्त होने पर भी बन्धन का अनुभव करता है । प्रथम चरित्र में राग-द्वेष का नाश हुआ है । द्वितीय चरित्र में अनन्त कुप्रवृत्तियों सहित अस्मिता (अहङ्कार) का विनाश हुआ । अविद्या से ही यह प्रपञ्च प्रतीत हो रहा है । अविद्या के कारण ही जीव-सृष्टि है, जिसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह जैसे प्रबल विकार उदय होते हैं । संसार या जीव-सृष्टि का अर्थ “मेरा-तेरा” है । यही मेरा-तेरा ही दुःखद है । इसे यों समझिये—धन बाहर है, बैंक में है, उसके प्रति ममता होने के कारण उसके जाने पर दुःख होता

है। दुःख का कारण धन नहीं है अपितु जितने धन के साथ मेरा जुड़ा है; उसके नष्ट होने पर ही तो दुःख हुआ। रेडियो, दूरदर्शन अथवा समाचार-पत्र में अनेक मनुष्यों की मृत्यु की घटनायें पढ़ते हैं, सुनते हैं, देखते हैं, किन्तु रोते नहीं, ओर यदि अपने परिवार के किसी व्यक्ति, पशु के साथ ऐसी घटना घटित हो जाये तो क्या दशा होती है? इसके सब भुक्त भोगी है। अतः कहने की आवश्यकता नहीं, स्पष्ट ही है कि दुःख वस्तु, पदार्थ, मनुष्य अथवा धन के होने या न होने, या नष्ट होने पर नहीं होता अपितु 'मेरा' जिस-जिस के साथ जुड़ा है, उसके जाने पर दुःख होता है। अतः स्पष्ट हो गया है कि धन, जन,, पद, अधिकार आदि प्रति मोह या ममता ही दुःखद है ईश्वर की सृष्टि में दुःख नहीं हैं। इसी मोह, ममता को जन्म देकर अविद्या ने जीव को जन्म-मरण के चक्र में भ्रमित किया है। तृतीय चरित्र में इस अविद्या-महाठगिनी माया का संहार प्रतिपादित हुआ है। इसलिए इसके ऋषि (प्रलयकारी) रुद्र हैं और ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी महासरस्वती इसकी देवता हैं। अज्ञानान्धकार को विलीन करने अविद्यान्धकार ध्वंसी, प्रकाश के प्रकाशक सूर्य देव इसके तत्व हैं; अनुष्टुप् छन्द है; कष्ट संहारिणी, दैत्य विनाशिनी, भयंकर कराल काल स्वरूपिणी 'भीमा' शक्ति हैं। तीनों लोकों के हित के लिए अरुण नामक दैत्य का विनाश करने के लिए 'भ्रामरी' का रूप धारण करके भ्रामरी के नाम से पूजित हुई थी। आसुरी प्रवृत्तियों-अविद्या को नष्ट करने के कारण भ्रामरी बीज है, भगवती सरस्वती वीणा धारिणी वीणा में सात स्वर 'संस्कृत' होते हैं। अतः उनका सम्बन्ध सामवेद से होने के कारण सामवेद स्वरूप बतलाया गया है।

महामना मनस्वी मेधा ऋषि ने पराम्बा को नमस्कार करके कथा प्रारम्भ की— हे राजन् ! प्राचीनकाल में शुभ और

निशुम्भ नाम के दो विशालकाय महाबलशाली अत्यन्त पराक्रमी दैत्य हुए । जिन्होंने देवताओं को परास्त करके उनको स्वर्ग से वहिष्कृत कर दिया, उनको समस्त अधिकारों से वञ्चित कर स्वयं राजा बन गये । सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि का कार्य छीन कर स्वयं शासन करने लगे । इस दुःखद परिस्थिति में समस्त देवता क्षुब्ध होकर गिरिराज हिमालय पर जाकर पराम्बा की स्तुति करने लगे । इस स्तुति का नाम “देवी-सूक्त” है यह देवी सूक्त भक्तों के पाठ करने पर समस्त मनोकामनायें पूर्ण करता है । भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार की सिद्धियाँ सिद्ध करता है अतः बड़ा महत्वपूर्ण है । संसार के प्रत्येक व्यवहार में, जड़-चेतन में, कण-कण में यही पराम्बा परमेश्वरी प्याप्त हैं, ऐसा बताकर प्रत्येक श्लोक में ‘नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः’ कर तीन-तीन बार नमस्कार किया है जैसे विष्णु माया, चैतन्य, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, शक्ति, तृष्णा, क्षान्ति लज्जा, शान्ति, श्रद्धा, लक्ष्मी, वृत्ति, स्मृति दया, पुष्टि, तुष्टि (आजकल ‘तुष्टि को ही संतोषी माता कहा जाता है) भ्रान्ति, माता आदि के स्वरूप को जगदम्बा बताकर नमस्कार किया गया है ।

इस प्रकार यदि साधक संसार के प्रत्येक पदार्थ को महाशक्ति का स्वरूप समझ लें, तो निस्संदेह वह अविद्या को पार कर सकता है । देवताओं ने इस प्रकार स्तुति करके जगदम्बा को याद दिलाई कि आपने हमें वचन दिया था—
“आपत्ति आने पर रक्षा करूँगी” अपने वचनानुसार हमारी आपत्तियों को दूर कीजिये । भगवती पारवती यहाँ गंगा स्नान के लिये आई हुई थीं, उन्होंने देवों की स्तुति सुनकर अपने शरीर कोषों से शिवा देवी का प्राकट्य किया, वे बोलीं
“तुम्हा । कल्याण हो । देवताओं के द्वारा दैत्यों का अन्याय सुनकर पार्वती के शरीर से अम्बिका प्रकट हुई । इन्हें ‘कौशिकी’

कहते हैं इनका रंग काला पड़ जाने से इनका नाम 'कालिका' पड़ गया ।

इधर अम्बिका के परम, मनोहर, दिव्य रूप से मुग्ध होकर वहाँ विचरण करने वाले चण्ड-मुण्ड दैत्यों ने अपने स्वामी शुम्भ के पास जाकर माँ के रूप लावण्य की प्रशंसा की तथा उन्हें ही एक मात्र भोग्य बताया । दैत्यराट् शुम्भ ने तुरन्त अपने दूत सुग्रीव को देवी के पास भेजा और कहा—“तुम जाकर मेरी प्रशंसा करके साम दाम, दण्ड-भेद से किसी भी प्रकार उस सुन्दरी को यहाँ ले आओ” । दूतने हिमालय पर जाकर बड़े विस्तार से मधुर शब्दावली में शुम्भ की प्रशंसा करके पराम्बा को उसके पास चलने के लिए आमन्त्रित किया । माँ ने हँसते हुए अपनी प्रतिज्ञा इस प्रकार सुनाई :—

यो माँ जयति संग्रामे, यो मे दर्पं व्यपोहति ।

यो मे प्रतिबलो लोके, स मे भर्ता भविष्यति ॥ ५/१२०

“जो मुझे संग्राम में जीतकर मेरे अभिमान को चूर्ण कर सकेगा, तथा संसार में मेरे समान बलशाली होगा, वही मेरा स्वामी होगा ।” कहकर विनम्रता से अपनी विवशता प्रकट करदी ।

वह निशाचर भला इसका क्या अर्थ समझे, वह तो इतना ही समझता है कि यह एक स्त्री रत्न है, परम सुन्दरी है, अत्यंत सुकुमारी है, उसके मुख से 'युद्ध करने वाला तथा जीतने वाला ही मेरा पति होगा' की बातें सुनकर हँसने लगा और पुनः बोला हे देवी ! वह शुम्भ इतना प्रबल दैत्य है कि तुम्हारे केशों को पकड़कर घसीटता हुआ ले जायेगा, तुम्हारा अपमान होगा । तुम इतनी सुकुमारी अवला क्या कर सकोगी ?

सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता, पार्श्वं शुम्भ निशुम्भयोः ।

केशाकर्षणनिर्धूत गौरवा सा गमिष्यसि ॥ ५/१२६

मेरे कहने से ही शुंभ निशुंभ के पास चली जाओ, अन्यथा अपमानित होकर जाना पड़ेगा । इसे सुनकर भगवती ने कहा- मैंने बिना विचारे यह प्रतिज्ञा कर ली है । इसका निर्वाह मुझे करना ही होगा ।” तुम उस दैत्यराज से आदर पूर्वक कह देना, जैसा उचित समझेंगे वैसा करेंगे ।

किं करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता पुरा ।

स त्वं गच्छ मयोक्तं ते यदेतत्सर्वमाहृतः ।

तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय स च युक्तं करोतु तत् ॥ ५/१२८-१२९

शुम्भ-निशुम्भ की आसक्ति और जगदम्बा की प्रतिज्ञा पर आप लोग विचार करें—शुम्भादि का आकृष्ट होना कोई बड़ी बात नहीं । भगवान् के मोहिनी रूप को देखकर असुर ऐसे मुग्ध हुए कि बेचारे हाथ में आये हुये अमृत को हाथ से खो बैठे; और पी न सके, क्योंकि सौन्दर्य सम्पदा ही भगवती लक्ष्मी का रूप है “श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे, नक्षत्राणि

रूपमश्विनौ व्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुं

म इषाण सर्वलोकं म इषाण ।

(यजुर्वेद अ. ३१ कण्डिका २२)

महीधर ने इस मंत्र में ‘श्री’ शब्द का अर्थ ‘सम्पदा’ किया है । इसी से मनुष्य आश्रयणीय होता है । लक्ष्मी शब्द का अर्थ सौन्दर्य किया है इसी से लोगों की दृष्टि आकृष्ट होती है । जिसको हर कोई चाहे, आकृष्ट होकर सब जिसकी ओर दौड़ें, उसी को लक्ष्मी कहते हैं; किन्तु यह शक्ति, शोभा, सम्पदा, श्री, लक्ष्मी, वैभव जिसको मिलता है यह देवी स्वयं अपने मुख से कह रही है— ‘यो मां जयति संग्रामे’ जो मुझे संग्राम में जीतेगा ।

“संग्राम में कौन विजयी होता है ? एक जनपदीय मल्ल (पहलवान) प्रान्तीय मल्ल से, प्रान्तीय मल्ल राष्ट्रीय मल्ल से हार ही जायेगा और शृंखला क्षेत्रीयता के विस्तार से जय-

पराजय में परिणत होती जायेगी। जो किसी से पराजित हो जाये वह विजयी कैसा ? अतः महाशक्ति के वरण करने वाला शूरवीर ऐसा होना चाहिए; जिसे कोई कभी कहीं भी पराजित न कर सके, न हो सके। और वह है केवल 'जितेन्द्रिय पुरुष'।

“इन्द्रियाणां जयेच्छूरः”, “न रणे विजयाच्छूरः” यह शास्त्र दृष्टान्त भी है—(मेघनाद के वध होने पर उसकी सती पत्नी द्वारा भुजा में पकड़ाई चाक - मिट्टी के द्वारा लिखित वर्णन के माध्यम से) स्वयं मेघनाद ने अपनी पत्नी को लक्ष्मण की प्रशंसा करते हुए लिखा है मैं ‘इन्द्रजीत’ तो हूँ, किन्तु लक्ष्मणजी ‘इन्द्रियजीत’ हैं। इसी कारण मैं उनसे परास्त हो गया हूँ इन्द्रिय-विजयी ही अपने ज्ञान-विज्ञान द्वारा रक्षित रह सकता है। अतः भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को संग्रामजेता बनने के लिए इन्द्रियों पर विजय पाने का दिव्य संदेश देते हुये कहते हैं :—

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।

पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञान विज्ञान नाशनम् ॥गीता ३/४१॥

कामनाएँ ही ज्ञान-विज्ञान को नष्ट करती हैं। पहले इन्द्रियों को संयमित करो, तभी विजय मिलेगी तथा यो मे दर्प व्यपोहति जिसने अभिमान नष्ट कर लिया है। यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते। गीता १८/१७ अभिमान रहित बुद्धि ही शक्तिशाली होती है। “यो मे प्रतिबलो लोके” (जो मेरे बल के समान बलशाली हो) नारायण के अतिरिक्त महाशक्ति के बराबरी वाला और कौन हो सकता है, केवल नारायण ही होंगे, यह ज्ञान होना चाहिये।

दिव्य-शक्तियों की उपलब्धियों के अनेक दृष्टान्त भारतीय आर्ष ग्रन्थों में प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। आधि दैविक शक्ति प्राप्ति का उदाहरण कुन्तो हैं। उन्होंने अपने तपोभूत मन से जिसका आह्वान किया, वही उपस्थित हुआ चाहा तो सूर्य को आहूत किया, चाहे तो धर्म को। आधि भौतिक शक्तियों का पुंज

भरद्वाज मुनि के इंगित पर नृत्य करता है । जब भरत जी अपने पूज्य पिता जी के और्ध्वदैहिक संस्कारोपरान्त गुरुजनों की अनुमति से श्रीराम जी को वन से अयोध्या लौटा लाने के लिये चित्रकूट को प्रस्थान करते हुए मार्ग में भरद्वाज मुनि के आश्रम में ससैन्य परिकर एवं परिवार सहित रात्रि में विश्राम करने के लिए ठहरे; तब मुनि के द्वारा क्षणभर में समस्त सुख सुविधा उपस्थित कर दी गई हैं ।

इससे स्पष्ट है कि संयमी, निरभिमानी तथा ज्ञानी के लिए ये महाशक्तियाँ सहज सुलभ हैं ।



षष्ठोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ नागाधीश्वर विष्टरां फणिफणोत्तंसोररत्नावली

भास्वद्देहलतां दिवाकर निभां नेत्रत्रयोद्भासिताम् ।

मालाकुम्भ कपाल नीरजकरां चन्द्रार्धचूडां परां

सर्वज्ञेश्वर भैरवाङ्कनिलयां पद्मावतीं चिन्तये ॥

जगज्जननी जगदम्बा जगदीश्वरी नागराज शेष के आसन पर विराजमान है, उनकी देहलता नागों के फणों में देदीप्यमान, मणियों की सुन्दर भव्य माला से दीप्तिमान हो रही है, उन सूर्य के समान तेजस्विनी के तीनों नेत्र उनके सौन्दर्य की और भी अभिवृद्धि कर रहे हैं। उनके हाथों में माला, कुम्भ, कपाल और कमल सुशोभित हैं, तथा मस्तक पर अर्द्ध चन्द्र-मुकुट जिनके सौन्दर्य-माधुर्य में चार-चांद लगा रहा है, सर्वज्ञेश्वर भैरव के अङ्क में निवास करने वाली ऐसी परमोत्कृष्ट पद्मावती देवी का मैं चिन्तन करता हूँ।

इस छठे अध्याय में यह वर्णन है उस सुग्रीव दूत से शुम्भ ने भगवती की यह प्रतिज्ञा सुनकर दैत्यराज धूम्रलोचन को उस सुन्दरी को पकड़कर लाने का आदेश दिया; किन्तु आसुरी भाव वाला दैत्य बेचारा महाशक्ति को कैसे ग्रहण कर सकता है? धूम्र लोचन—जिसके नेत्रों में काला धुआं भरा हो अर्थात् दृष्टि ही धुंधली हो गई। मानसकार के अनुसार “ज्ञान-विराग नयन उरगारी” नेत्र तो ज्ञान और वैराग्य ही होते हैं। श्रुति-स्मृति भी नेत्र बताये गये हैं, इसमें ये किसी प्रकार के लक्षण नहीं हैं। उसके लिए महाशक्ति का स्पर्श तो दूर सम्मुख उपस्थित होना भी असम्भव है। ऐसा ही हुआ,

“हुंकारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः । ६/१३

माँ ने हुंकार मात्र से उसे भस्मीभूत कर दिया। धूम्र-लोचन के मरने की सूचना पाकर शुम्भ ने चण्ड-मुण्ड को भेजा।

नमो नमो अम्बे

नमो नमो दुर्गे सुख करनी, नमो नमो अम्बे दुख हरनी ।
 शशि ललाट मुख महा विशाला, नेत्र लाल भृकुटी विकराला ।
 तुम संसार शक्ति लय कीना, पालन हेतु अन्न धन दीना ।
 अन्नपूर्णा हुई तू जगपाला, तुम ही आदि सुन्दरी बाला ।
 शिव योगी तुम्हारे गुण गावे, ब्रह्मा विष्णु तुम्हें नित ध्यावें ।
 धर्यो रूप नरसिंह को अम्बा, प्रकट भई फाड़ के खम्बा ।
 रक्षा करि प्रह्लाद बचायो, हिरणाकुश को स्वर्ग पठायो ।
 महिषासुर नृप अति अभिमानी, जेहि अघ भार मही अकुलानो ।
 रूप कराल काली को धारा, सेन सहित तुम तिहि संहारा ।
 ज्वाला जी में ज्योति तुम्हारी, तुम्हें सदा पूजें नर नारी ।
 प्रेम भक्ति से जो यश गावें, दुःख दारिद्र्य निकट नहि आवें ॥
 ध्यावें तुम्हें जो भी मन लाई, जन्म-मरण ताको छुटि जाई ॥

सप्तमोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ ध्यायेयं रत्नपीठे शुक्लकलपठितं शृण्वतीं श्यामलाङ्गीम् ।
 न्यस्तैकाङ्घ्रिं सरोजे शशिशकलधरां बल्लकीं वादयन्तीम् ॥
 कल्लाराबद्धमालां नियमित बिलसच्चोलिकां रक्त वस्त्राम् ।
 मातङ्गी शंख पात्रां मधुर मधुमदां चित्रकोद्भासि भालाम् ॥

मैं रत्न जटित सिंहासन पर विराजमान होकर तोते द्वारा पठित सुन्दर मधुर शब्द सुनती हुई, अङ्गों की श्यामल कान्ति से कान्तिवान, अपना एक चरण कमल पर रखकर, ललाट में अर्द्धचन्द्र तथा कण्ठ में कल्लार पुष्पों की माला धारण किये हुये वीणा बजा रही हैं; जो रक्त-वर्ण (लाल रंग) की साड़ी पहने हुए हैं उसी रंग की कञ्चुकि जिनके अङ्गों में कसी हुई शोभा पा रही हैं, हाथ में शङ्ख भरा पात्र लिये हैं, जिनके मुख पर मधु का हलका सा प्रभाव भाषित हो रहा है, ललाट में मङ्गल-चिह्न बिन्दी शोभित किये हुये हैं उसी मातङ्गी देवी का ध्यान करता हूँ ।

ध्यानोपरान्त ऋषि कहते हैं—हे राजन् ! शुम्भ की आज्ञा पाकर वे चण्ड-मुण्ड आदि दैत्य चतुरङ्गिणी- (पैदल, रथ, हाथी, घोड़े) सेना साथ ले, अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित होकर देवी पर आक्रमण करने के लिए चल दिये । गिरिराज हिमालय के सुवर्णमय उच्चशिखर पहुँचकर उन्होंने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए सिंह-वाहिनी को देखा, तो अस्त्र-शस्त्रों से प्रहार करते हुए चारों ओर उस देवी पर टूट पड़े ।

तब अम्बिका ने शत्रुओं पर क्रोध किया तो उनका मुख काला पड़ गया, ललाट में भौंहे टेढ़ी हो गयीं और वहाँ तुरन्त विकराल काली प्रकट हुई जो तलवार, पाश और खट्वाङ्ग धारण किये ये, चीते के चर्म की साड़ी पहने हुये, नर मुण्डों

की माला से विभूषित थी । मांस रहित अस्थि-पंजर, विशाल मुख लपलपाती हुई जीभ, डरावनी लाल-लाल भोतर धँसी हुई आँखें, भयंकर गर्जना करती, अनेक दैत्यों का वध करती, कुछ को मुँह के द्वारा चबाती हुई, अस्त्र-शस्त्रों को चूर्णित करती हुई, हाथी घोड़ों को मुँह में डालती सैन्य संहार करने लगी । तब क्रुपित होकर दैत्य सेनापति चण्ड-मुण्ड विपरीत दिशाओं से माँ पर टूट पड़े । दोनों के चक्रों से छुटे हुये वाणों को मुख में लेकर काली देवी ने भयंकर गर्जना की और खड्ग-से 'हं' का उच्चारण कर केश पकड़ कर पहले चण्ड का मस्तक काट लिया, उसे मरा हुआ देख मुण्ड भी देवी की ओर दौड़ा । उसे भी रोष में भर देवी ने धरती पर सुला दिया । तत्पश्चात् काली ने उन दोनों के मस्तक हाथ में लेकर चण्डिका के पास जाकर प्रचण्ड अट्टहास करते हुए कहा—देवि ! मैंने चण्ड और मुण्ड दोनों महापशुओं को भेंट किया है अब युद्ध-यज्ञ में शुम्भ और निशुम्भ का वध स्वयं करना ।

चंडि कोपे, क्रोध अर्थ में प्रयुक्त होने वाली धातु से :चण्ड' शब्द प्रतिपादित होता है इसी से चाण्डाल भी बनता है । 'मुंडि' खण्डने से मुण्ड बनता है; खण्डन करने में अश्रद्धा और द्वैत भाव का होना अनिवार्य है । क्रोध भाव से चाण्डाल के आचरण होते हैं । क्रोध आने का मूल कारण द्वैत भाव ही है और द्वैत भाव का जनक अज्ञान ही है । इष्ट पर दृढ़ता करने के कारण काकभुशुण्डी को लोमश ऋषि के शाप का भाजन होना पड़ा, किन्तु क्षमा और सहिष्णुता गुणों के द्वारा ही पुनः ऋषि के कृपा भाजन बन गये ।

उपर्युक्त दृष्टान्त चण्ड-मुण्ड के वध के व्यावहारिक प्रयोग है । इस अध्याय में माँ काली के द्वारा जो चंड मुंड का वध किया गया है । वे ये क्रोध रूप चंड और द्वैत बुद्धि रूप मुंड हैं साधक को इनका बड़ा ध्यान रखना चाहिए । जो इन दोनों का वध कर लेता है उसे जगत् में ख्याति मिलती है ।

अष्टमोऽध्यायः ध्यानम्

ॐ अरुणां करुणातरङ्गिताक्षीं

धृतपाशांकुश बाण चापहस्ताम् ।

अणिमादिभिरावृत्तां मयूखै-

रहमित्येव विभावये भवानीम् ॥

मैं गौर वर्णाङ्गाभामयी, करुणा तरङ्गायित नयना, पाश, अंकुश, बाण और धनुष हाथ में धारण करने वाली अणिमा आदि सिद्धियों की किरणों से आवृत्ता भवानी का चिन्तन करता हूँ ।

महर्षि कहते हैं कि चण्ड-मुण्ड दैत्यों के मारे जाने तथा उनकी सेना के संहार के संदेश से दैत्यराज शुम्भ बड़ा क्रोधित एवं क्षुब्ध हुआ और उसने सम्पूर्ण दैत्य सेना को युद्ध के लिए प्रस्थान करने की आज्ञा दी । उसकी सेना का संकेत-अपनी सेनाओं सहित उदायुध नाम के छियासी सेनापति, कम्बु नाम वाले दैत्यों के चौरासी सेनानायक सवाहिनी, कोटिवीर्य कुल के पचास और धौम्र कुल के सौ असुर सेनापति अपनी-अपनी सेना के साथ तथा कालक, दौर्हद, मौर्य और कालकेय असुर भी युद्ध के लिए प्रस्थित हुए । इस भयंकर विशाल वाहिनी को देख चण्डिका ने अपने धनुष की टंकार, शंख की ध्वनि तथा सिंह की दहाड़ की ध्वनि से आकाश पृथ्वी को गुंजित कर दिया, घण्टे की ध्वनि दिशाएँ ध्वनित करने लगी । काली ने उस भयानक ध्वनि से अपना मुख बड़ा लिया । इसी बीच असुरों के विनाश और देवताओं के अभ्युदय के लिए ब्रह्मा, शिव, कार्तिकेय, विष्णु तथा इन्द्र आदि देवों की शक्तियाँ-जो रूप, वेश भूषा, वाहन, बल, पराक्रम और आयुधों में अपने-अपने देवताओं के समान थी,

उनके शरीरों से निकलकर चण्डिका की सहायता के लिए दैत्य-दलन हेतु समरांगण में आ गई ।

बड़ा भयंकर युद्ध हुआ, दैत्यों की वाहिनी प्रातः कालीन ओस की बूंदों की तरह विनष्ट हो रही थी, तभी रक्त बीज इन्द्र की शक्ति ऐन्द्री के वज्र से घायल हो गया । उसकी प्रत्येक रक्त-बूंद से उसी के समान बल-पराक्रम सम्पन्न आयुधों से युक्त भयंकर राक्षस वीर पैदा होकर मातृकाओं को मारने लगे ।

यावन्त पतितास्तस्य शरीराद्रक्त विन्दवः ।

तावन्तः पुरुषा जातास्तद् वीर्यबल पराक्रमाः ॥ ८/४४

ज्यों-ज्यों इस रक्तबीज के शरीर पर प्रहार होता, रक्त-पतन से अनेक असुर वर्षा में पैदा होने वाले जीवों की तरह पैदा हो कर लड़ने लगते । इस दृश्य से देवता बड़े भयभीत हुए । उन्हें उदास देखकर चण्डिका ने काली को अपने शस्त्रपात से गिरने वाले रक्त विन्दुओं और उनसे उत्पन्न होने वाले महादैत्यों को मुख से भक्षण करने का आदेश दिया । चामुण्डा की इस प्रक्रिया से महा भयावह रक्तबीज युद्ध में मारा गया । देवताओं को अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ । मातृ-गण नृत्य करने लगा ।

इस अध्याय में रक्तबीज वध का प्रसङ्ग बड़ा शिक्षा प्रद एवं महत्त्वपूर्ण है । बड़ा सुन्दर संकेत है—यह 'रक्त-बीज' इच्छाओं का नाम है । मनुष्य की इच्छाएँ कभी समाप्त नहीं होती हैं । प्रत्येक इच्छा सगर्भा होती है जैसे ही एक इच्छा समाप्त होती है वैसे ही उससे भी अधिक प्रबल इच्छा पैदा हो जाती है । इससे विषयों की अभिलाषा नष्ट करना साधक के लिए कितना कठिन है । यह इस प्रसङ्ग से समझ सकते हैं । इन्द्रियाँ अथवा करण तो चौदह हैं; परन्तु प्रत्येक करण के विषय अनन्त हैं । उनका पार पाना बहुत कठिन है । जैसे रक्त बीज के रक्त की एक बूंद में जब इतनी प्रबलता है भला बताइए कितनी बूंदें हुई होंगी । यही असंख्य शब्द का प्रयोग विषयों की

वासनाओं के लिए है। इनके मारने का उपाय यही है कि रक्त बीज के रक्त की बूंद पृथ्वी पर न गिर सके, यह कार्य महाकाली को सौंप दिया, जिसने उसे सम्पन्न किया। विषयासक्ति रक्त-बीज के मरने पर ही शान्ति को प्राप्त होती है।



श्री अम्बे जी की आरती

अम्बे तू है जगदम्बे काली, जय दुर्गे खप्पर वाली,

तेरे ही गण गायें भारती ।

ओ मइया हम सब उतारें तेरी आरती ॥ १

तेरे (जगत के) भक्तजनों पर भीड़ पड़ी है भारी,
दानव दल पर दूट पड़ो करके सिंह सवारी,
सौ-२ सिंहों सी बलशाली, अष्टादस भुजाओं वाली,
दुष्टों को तो तू ही संहारती ॥ २ ओ मैया हम सब

माँ बेटे का इस जग में, बढ़ा ही निर्मल नाता ।

पूत कुपुत सुने हैं पर ना माता सुनी कुमाता ।

सब पर अमृत बरसाने वाली, सबको हर्षाने वाली—

मैया भँवर उतारती—ओ मैया सम सब उतारें—

नहीं मांगते धन और दौलत, ना मांगे चांदी ना सोना,

हम तो मांगे माँ तेरे मन में एक छोटा सा कोना,

सब पर करुणा दशनि वाली, विपदा मिटाने वाली

सतियों के सत को संवारती ॥ ओ मैया सब

चौदस के दिन तेरे भवन में, भीड़ लगी है भारी ।

जो कोई माँगे सोई फल पावे, कोई न जाये खाली ।

सब की झोली भरने वाली, मांगी मुरादों वाली ।

ओ मैया हम सब उतारें तेरी आरती ॥

खनन-खनन घन्टा बाजे, घंटों की झन्कार ।

तेरे भवन में मैया तेरी हो रहा जय-जय कार ॥

द्वार खड़े माँ तुझे पुकारें, एक बार तो आजा ।

भक्त खड़े, माँ तुझे पुकारें आकर दर्श दिखाजा ॥

अम्बे तू है जगदम्बे काली, जय दुर्गे खप्पर वाली

तेरे ही गुण गायें भारती, ओ मैया हम सब उतारें०

नवमोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ बन्धूक काञ्चननिभं रुचिराक्षमालां

पाशांकुशौ च वरदां निजबाहुदण्डैः ।

विभ्राणमिन्दु शकलाभरणं त्रिनेत्र

मर्धाम्बिकेशमनिशं वपुराश्रयामि ॥

बन्धूक-दुपहरिया पुपहरिया पुष्प की रक्तिमा-लालिमा तथा स्वर्ण की पीतिमा की कान्ति से सुशोभित अर्द्ध नारीश्वर के श्री विग्रह की शरण लेता हूँ; जो अपनी भुजाओं में सुन्दर अक्षमाला, पाश, अंकुश और वरद मुद्रा धारण किये हुए हैं; जिसके ललाट पर अर्द्ध चन्द्र का आभूषण आभूषित है और तीनों नेत्रों से सुशोभित है ।

मधु-कैटभ का वध हो या धूम्रलोचन का ध्वंस, अथवा चण्ड-मुण्ड संहार या फिर रक्तबीज के रक्त-पान से विनाश, इन सब का उद्धार हुआ करुणामयी माँ के हाथ से । यह देवी कृपा का विधान है कि जिसे हम लय, प्रलय, विनाश, ध्वंस कहते हैं वह कष्टों से, दुःखों से मुक्ति है । इसी में लोक-कल्याण निहित है, अतः प्रत्येक मङ्गलाकांक्षी को भगवती का ध्यान करना चाहिए ।

भगवती के चरित्र-लीला के आनन्द में निमग्न जिज्ञासु राजा ने महामति मेधा से विनत भाव से कहा—भगवन् ! आपके द्वारा रक्त-बीज के वध से सम्बन्धित देवी-चरित्र की यह अद्भुत महिमा जानकर बड़ी उत्सुकता हो रही है कि इसके पश्चात् क्रोध में भरे हुए शुम्भ-निशुम्भ ने क्या किया; सुनना चाहता हूँ ।

महामुनि मेधा ने बताया—राजन् ! जन-धन-बल का संयोग जैसे मनुष्य को खुशी देता है उसी प्रकार इनका वियोग महा

दुःखदायो बन जाता है, वह क्रोध में आग बबूला हो जाता है । अतः स्वाभाविक था कि रक्त बीज जैसे सेनापति तथा विशाल सेना के मारे जाने पर शुम्भ-निशुम्भ का बौखला जाना स्वाभाविक था । विमर्ष में भरकर निशुम्भ देवी की ओर दौड़ा । इसके साथ विशाल दैत्य सेना थी । शुम्भ भी मातृगणों से युद्ध करके चण्डिका को मारने आ पहुँचा । दिव्य अस्त्रों से भयंकर युद्ध हुआ । निशुम्भ ने तीखी तलवार से देवी के वाहन पर प्रहार किया, फिर क्या था ? माँ ने उसके अनेक प्रहारों को अपने रण-कौशल से छिन्न-भिन्न कर दिया । काली ने दोनों हाथों के आघात से पृथ्वी को हिला दिया । शिवदूती ने दानवों के लिए अमंगल-कारी अट्टहास किया, देवों ने जय-जयकार किया, इसी उपयुक्त अवसर पर देवी ने राक्षस शुम्भ पर अपना शूल चला दिया, वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा ।

भाई के पतन को निशुम्भ सहन न कर सका, उसने अपने बाणों से देवी, काली तथा सिंह को घायल कर दिया । दुर्गम पीड़ा विनाशनी दुर्गा ने क्रुपित होकर उसके बाणों और चक्रों को काट कर अपने शूल से उसकी छाती विदीर्ण कर दी, जिससे दूसरा महाबली पुरुष निकल कर देवी को ललकारने लगा, देवी ने ठठाकर हँसते हुए तीक्ष्ण खड्ग से उसका सिर काट डाला । सिंह ने दैत्यों की गर्दन नोची, कालिका ने अनेक दैत्यों का भक्षण किया । वैष्णवी ने चक्र से दानवों के टुकड़े-टुकड़े कर दिए । शेष भाग गये । इस प्रकार निशुम्भ का वध हुआ ।

इस युद्ध से विदित हुआ कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा इनकी शक्तियाँ—ब्रह्माणी, रुद्राणी, वैष्णवी, कालिका, दुर्गा सभी एक हैं; इस एक तत्व की उपासना ही लक्ष्य होना चाहिए चाहे इष्ट किसी भी स्वरूप को बनायें ।

दूसरी बात यह है कि निशुम्भ की छाती से दूसरे पुरुष का पैदा होकर पुनः देवी को ललकारने का तात्पर्य यह है कि चित्त

से आसुरी वृत्तियाँ संयम, नियम के द्वारा नियंत्रित करने पर भी पैदा हो जाती है, जो हमारी दैवी वृत्तियों को निगलना चाहती है। अतः साधक को सजग रहना चाहिए, माँ की शरण लेनी चाहिए। माँ के निम्न मंत्र से सब मनोरथ पूरे हो सकते हैं—

यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ।

परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यते भूतले पुमान् ॥ कवच ४४ ॥

माँ की शरण में पहुँचने पर मनुष्य की निश्चित ही समस्त कामनायें पूर्ण होती हैं और वह परम ऐश्वर्य का भागी होता है। अतः माता की शरण लेना जीवन की सार्थकता है।



दशमोऽध्याय

ध्यानम्

ॐ उतप्त हेम रुचिरां रवि चन्द्र वह्नि-

नेत्रां धनुश्शर युताङ्कुश पाश शूलम् ।

रम्यैर्भुजैश्चदधतीं शिव शक्ति रूपां

कामेश्वरीं हृदि भजामि घृतेन्दुलेखाम् ॥

मैं तपाये हुए स्वर्ण के समान सुन्दर, सूर्य, चन्द्र और अग्नि तीनों नेत्र वाली; अपनी सुन्दर भुजाओं में धनुष, वाण अङ्कुश, पाश और शूल धारण किए तथा मस्तक पर अर्द्धचन्द्र धारण किए हुए शिव शक्ति-शक्ति स्वरूपा कामेश्वरी का हृदय में चिन्तन करता हूँ ।

खोट निकालने के लिए सोने को अग्नि में तपाया जाता है, अतः देहाभिमान को गलाने के लिए साधना की अग्नि में रहना चाहिए । रवि - चन्द्र वह्नि, क्रमशः प्रकाश, आल्लादक एवं दाहक एवं पाचक है, प्रकाश के तीन ही आधार हैं, घिना प्रकाश के अन्धकार विलीन हो नहीं सकता, सबकी प्रकाशिका एक मात्र सच्चिदानन्दमयी माँ ही हैं, वे ही भक्त पर रीझकर समस्त कामनायें-पूर्ण करती हैं अतः कामेश्वरी हैं उन्हीं का ध्यान करना अपेक्षणीय है ।

ध्यानोपरान्त ऋषि कहते हैं—राजन् ! अपने प्राणों के समान प्यारे भाई निशुम्भ को मारा गया देख तथा सेना का संहार जान संहार जान शुम्भ कुपित होकर बोला—“दुष्ट दुर्गे ! तू बल के अभिमान में बड़ी मानिनी बनी हुई है ।” किन्तु दूसरी स्त्रियों का बल लेकर लड़ती है । माँ ने कहा—‘अरे धूर्त’ मैं अकेली ही हूँ, मेरे सिवा संसार में दूसरा कौन है, ये सब मेरी विभूतियाँ हैं, मुझमें प्रवेश कर रहीं हैं ऐसा कहते ही केवल अम्बिका देवी ही अवशेष रहीं ।

इसके पश्चात् देवता-दानवां के देखते देखते देवी और शुम्भ दोनों में बड़ा भयंकर युद्ध हुआ । एक दूसरे ने अपने रण कौशल से भयंकर दिव्य अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग से अपने शत्रु के प्राण लेने चाहे । अन्त में माँ ने अपने त्रिशूल से शुम्भ का हृदय छेद दिया और उसके प्राण-पखेरू उड़ गये । उस दुरात्मा के मारे जाने से सम्पूर्ण जगत प्रसन्न एवं पूर्ण स्वस्थ हो गया और आकाश स्वच्छ दिखाई देने लगा । नदियाँ भी ठीक मार्ग से बहने लगीं ।

गुरु के द्वारा हृदय-ग्रन्थि के छेदन पर तात्त्विक ज्ञान होता है, आसुरी वृत्तियों के नाश पर ही इन्द्रियों के देवता प्रसन्न होते हैं सद्वृत्तियों से स्तुति की जाती है ।

इस अध्याय की कथा में समस्त दैत्यों की समाप्ति पर देवताओं ने प्रसन्न होकर भगवती की स्तुति की है, क्योंकि दैवी-भाव तभी उदय होते हैं जब विकारों के दैत्य नष्ट हो जाते हैं—
इच्छा द्वेष समुत्थेन द्वन्द मोहेन भारत ।

सर्व भूतानि सम्मोहं सर्गेयान्ति परन्तप ॥ २६

येषां तु त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।

ते द्वन्द मोह निमुक्ता भजन्ते माँ दृढव्रताः ॥ २८

जरा मरण मोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।

ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्मचाखिलम् ॥ गी० अ० ७/२७/२६

अर्थात् इच्छा द्वेष के कारण मोहित हुआ जीव बेचारा 'जन्म-मरण (पुनरपि जननम् पुनरपि मरणम् पुनरपि जननी जठरे शयनम्)' रूपी संसार में पड़ा हुआ है । जिन पुण्य बातों ने इन पर विजय प्राप्त की है वे ही भगवान् की सच्ची भक्ति कर सकते हैं । मेरी भक्ति तथा मेरे लिए किया गया पुरुषार्थ ही संसार को छुड़ा सकता है । वह भक्त ब्रह्म स्वरूप हो जाता है । मेरी भक्ति अथवा मेरा भजन वही व्यक्ति कर पाता है जो द्वन्द मोह से निर्मुक्त है वह ध्यान देने योग्य शब्द

है साथ ही यह भी जान लेना जरूरी है कि असुर कौन हैं ?

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।

अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम् ॥ गीता १६/४

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।

दम्भाहंकार संयुक्ता कामराग बलान्विता ॥ १७/५

कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।

मां चैवान्तः शरीरस्थं तान्विद्वयासुर निश्चयान् ॥ १७/६

दम्भ अहंकार, काम, राग, मद मोह से भरे लोग असुर हैं असुषु-देहेन्द्रियादिषु रमते, वासनासु रमन्ते त एव असुराः जो वासना पूर्ति में, इन्द्रियों को तृप्त करने में लगे हैं; वे ही असुर हैं । गीता के सोलहवें अध्याय के सातवें मन्त्र से अठारहवें मन्त्र तक शुम्भ-निशुम्भ की समस्त आसुरी प्रवृत्तियाँ स्पष्ट हो जाती हैं । उदाहरणार्थ श्लोक १०/११ प्रस्तुत हैं—

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।

मोहाद् गृहीत्वा सद् ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचि व्रताः ।

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः ।

कामोपभोग परमा एतावदिति निश्चिताः ॥ गी. अ. १६/१०-११

काम भोग परायण असुर होते हैं । 'नितरां शेरते चेष्टा येषाम्' जो बेहोश हैं वे निशाचर हैं । शुम्भादि दैत्यों के नाम भी सार्थक हैं । आपने अभी सुना है कि असुर वे हैं जो इन्द्रियों की पूर्ति में प्रसन्न होते हैं और साधक या सुर वे हैं जो इच्छाओं की निवृत्ति में प्रसन्न होते हैं ।

साधक के जीवन में यही प्रबल पुरुषार्थ है कि वह इच्छाओं की निवृत्ति करे । विषयासक्ति—जिसे रक्त-बीज बताया गया है, उसका नाश करें तभी काम-क्रोध, लोभ, मोहादि पर विजय मिलेगी । इसी से परम सुन्दरी, परम सुकुमारी पराम्बा की सवारी सिंह है जो गहन विपिन का राजा है, स्वयं शिकार

करता हैं । जो लोग दूसरों की कमाई खाते हैं और भोगी हैं वे परा शक्ति स्नेह मूर्ति माँ को कैसे प्राप्त कर सकते हैं । श्रुति भी कहती है “नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः” यह आत्मा कमजोर दिल-दिमाग वालों की पहचान में नहीं आ सकता, क्योंकि विपर्यय ज्ञान-जो ध्रूमलोचन नाम से है, का मिटाना शूरवीरों का काम है । लक्ष्मी का वाहन उल्लू-आत्मज्ञान रहित होता है । धन दुर्मदान्ध होता है अतः उसे ज्ञान विज्ञान रूपी दिन में विवेक दिखाई नहीं देता ।

इन तीनों चरित्र के मनन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे लक्ष्य में बाधक राग-द्वेष (मधु-कैटभ) अस्मिता अहंकार (महिषासुर), विषयासक्ति तथा कामादिक विकारों (रक्त बीज, शुम्भादि) के नष्ट होने पर ही दैवी गुणों का विकास होता है ।



एकादशोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ बालरविद्युतिमिन्दुकिरीटां तुंगकुचां नयन त्रय युक्ताम् ।
स्मेरमुखीं वरदांकुश पाशामीति करां प्रभजे भुवनेशीम् ॥

प्रातः कालीन सूर्य कान्ति के समान देदीप्यमान, चन्द्र - मुकुट धारिणी, उच्च स्तनों से युक्त, तीनों नेत्र-सूर्य, चन्द्र, अग्नि धारिणी, मन्द-मन्द मुसकान मुख छटा प्रसारिणी तथा हाथों में अंकुश, पाश, अभय और वरद मुद्रा धारिणी माँ भुवनेश्वरी को मैं नमन करता हूँ ।

महामुनि मेधा ऋषि कहते हैं कि असुरों के समापन होने पर प्रसन्नचित्त होकर देवताओं ने स्तुति की—हे विश्वेश्वरी ! शरणागत संकट निवारिणी, भक्त जन कल्याणिनी माँ जगदम्बे प्रसन्न होकर विश्व की रक्षा करो, तुम ही इस संसार की आधार हो, क्योंकि तुम ही पृथ्वी रूपा हो, तुम ही जल रूप होकर जगत को तृप्त करती हो । तुम ही अनन्त बलशालिनी, वैष्णवी शक्ति तथा जगत की कारण रूपा माया हो, तुमसे ही यह जगत मोहित है । तुम्हीं मुक्ति दायिनी हो ।

हे माँ ! सम्पूर्ण विद्यायें तुम्हारे ही भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं । जगत की सम्पूर्ण स्त्रियाँ तुम्हारी मूर्तियाँ हैं । तुमने ही विश्व को व्याप्त किया है । तुम्हीं परा वाणी होने के कारण अवर्णनीया हो ।

सर्व स्वरूपा देवि, बुद्धिरूप से सब लोगों के हृदय में विराजमान रहने वाली, स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदायिनी, कला-काष्ठादि के रूप में उत्पत्ति, स्थिति एवं संहारकारिणी, मंगलमयी, मंगल दायिनी, सर्व सिद्धि प्रदात्री, शरणागत वत्सला नारायणी आपको नमस्कार है । यहाँ 'वत्सला' शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है । जैसे सद्यप्रसूता धेनु (गाय) अपने बछड़े को अपनी जीभ से चाटकर शुद्ध और

स्वच्छ कर देती है। उसे अपने वत्स के शरीर पर लगे हुए मल-मूत्र के छुड़ाने में घृणा न होकर प्यार उमड़ता है, इसीलिए 'वत्सला' कहते हैं।

एक बालक मल-मूत्रावेष्टित पड़ा है, उसकी आँखों और नाक से भी मैल निकल रहा है, रोता हुआ दीन-हीन अवस्था में पड़ा हुआ है। ऊपर की ओर हाथ उठाये हुये माँ-माँ पुकारता है। उसके आर्त स्वर को सुनकर ऐसी कौन माँ है जो दौड़कर उसे छाती से न लगा ले और अपनी करुणामयी दृष्टि तथा कोमल स्पर्श से निहाल न कर दे। संसार का नियम है कि साफ, स्वच्छ, हँसते-खेलते बालक को तो सभी लोग गले लगा लेते हैं, किन्तु वैसे बालक की शरणागत माँ ही है। इसी प्रकार सर्व-विध साधन सम्पन्न साधक को सभी अपना बना सकते हैं किन्तु जो दीन-हीन साधन विहीन अनाथ है, उसे तो करुणामयी माँ ही गले लगाती है। अपना असीम प्यार बरसाती है और स्वयं उसे शुद्ध कर लेती है।

दीनों-हीनों, पीड़ितों की रक्षिके माँ, तुम ही ब्रह्माणी हो, रुद्राणी हो, माहेश्वरी, वैष्णवी, कौमारी, नारसिंही, वाराही भी तुम ही हो, अपने अनेक आभूषण और आयुध धारण करके तुम्हीं प्रकट होती हो। तुम्हें बारम्बार नमस्कार है। वृत्रासुर पर इन्द्र की शक्ति होकर उसकी संहारिणी रूपा तुम्हीं हो। हे चण्ड-मुण्ड विनाशिनी देवी ! तुम्हीं लक्ष्मी लज्जा, श्रद्धा, पुष्टि, स्वाहा, स्वधा, ध्रुवा, महारात्रि, महा विद्या, महा अविद्या रूपा नारायणी हो, तुम्हें नमस्कार है। मेघा, सरस्वती ऐश्वर्यरूपा, वाग्मी, पार्वती, तामसी, महाकाली, नियता, संयता, ईशा सबको अधीश्वरी तुम ही हो। हे सर्वस्वरूपे ! शक्ति सम्पन्ने ! दिव्य रूपे माँ दुर्गे तुम्हें नमस्कार है। हे कल्याणी ! हे भद्र कालो ! हे जगदम्बे, सर्व प्रकार अपने आयुधों से रक्षा करने वाली तुम्हें नमस्कार है।

सर्व रोग विनाशिनी, सर्वमनोरथ सिद्धिदायिनी, विपद् विदारिणी, सर्व शरण प्रदायिनी, माँ तुम्हें नमस्कार है । हे देवि ! दैत्यों के विनाश हेतु आपने विविध रूप धारण किये थे, आपको नमस्कार है ! विद्याओं में, ज्ञान को प्रकाशित करने वाले शास्त्रों में; तथा वेदों में तुम्हारा ही वर्णन है । तुम्हीं संसार को अविद्या द्वारा बांधने वाली और विद्या द्वारा मुक्त करने वाली हो, अतः तुम्हें नमस्कार है ।

जहाँ राक्षस, शत्रु, सर्प आदि विषैले जीव, डाकू और भयंकरतम परिस्थितियों में रहकर तुम ही विश्व की रक्षा करती हो । हे विश्वनाथ वन्दनीये ! जो तुम्हें प्रेम से प्रणाम करते हैं; उन्हें आपके आश्रय का अनुभव होता है । अभी आसुरी सम्पत्ति का विनाश कर दैवि-सम्पत्ति का विकास किया है । हम सब आपकी शरण में हैं; कोटि-कोटि नमन करते हैं प्रसन्न होकर वरदान दीजिए ।

हे मातु भवानी, जगजननी, संकट हरणी, जन मन भरने दो ।
माँ हम सब तेरे बालक हैं, चरण तले निज तुम रहने दो ॥ हे०
देव पड़े जब विपदा में थे, तब मिलकर शरण तेरी आये ।
चढ़ सिंह पीठ रण में गरजी, फिर रूप वही दरसाने दो ॥ हे०
शुम्भ निशुम्भ को तुमने मारा, महिषासुर को तूने पछाड़ा ।
तूने रक्त बीज संहार किया, वह परम छटा बरसाने दो ॥ हे०
तूने जीवन दान दिया है, तूने उबारा, तुम्ही उबारो ।
भव पार लगे जीवन नैया, सब जन-मन को हरणाने दो ॥ हे०

इस प्रकार देवताओं की स्तुति को सुनकर माँ जगदम्बे बड़ी प्रसन्न हुई और उन्हें वरदान मांगने के लिये कहा । तब देवों ने कहा—

सर्व बाधा प्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरो ।

एवमेव त्वया कार्यमस्मद् वैरिविनाशनम् ॥ ११/३६

हे तीनों लोकों की अधीश्वरी माँ ! हमारी समस्त बाधाओं को दूर करते हुए शत्रुओं का विनाश करो । यह सुनकर देवी ने कहा—‘हे देवगण ! अठारहवें मन्वन्तर में (१) शुम्भ-निशुम्भ के वध हेतु नन्द यशोदा के प्रकट होकर विन्ध्याचल में निवास करूंगी (२) फिर वैप्रचित्त दानवों का विनाश करने के लिए भयंकर रूप में ‘रक्त-दन्तिका’ के नाम से अवतरित होऊँगी (३) दुर्भिक्ष काल में मुनियों के स्तवन से अयोनिजा अवतरित होकर उन्हें सौ नेत्रों से देखने के कारण ‘शताक्षी’ तथा प्राणियों को शाक खिलाकर प्राणों की रक्षा के कारण ‘शाकुम्भरी’ नाम से विख्यात होऊँगी । उसी अवतार में दुर्गम नामक महादैत्य का वध करने के कारण ‘दुर्गा’ नाम से पूजी जाऊँगी (४) ऋषियों की रक्षा हेतु ‘भीमा’ देवी के नाम से प्रकट होकर हिमालय पर रहने वाले राक्षसों का भक्षण करूंगी । तब मुनिवृन्द नत मस्तक होकर मेरी स्तुति करेंगे (५) तीनों लोकों को संतापित करने वाले ‘अरुण’ दैत्य का वध करने तथा तीनों लोकों के कल्याण हेतु भ्रामरी के रूप में अवतरित होऊँगी । उस समय सब लोग ‘भ्रामरी’ नाम से मेरी स्तुति करेंगे ।

इस प्रकार जब-जब जगत् में दानवी शक्ति बढ़ेगी तब-तब उन शत्रुओं के विनाश तथा तुम्हारे कल्याण के लिये मैं आती रहूँगी । माँ जगदम्बा ने अपने मुख से देवों को आश्वासन दिया, अपने अवतारों का प्रयोजन तथा नामों का वर्णन किया । यही उनकी करुणा है ।



द्वादशोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ विद्युद्दाम समप्रभां मृगपतिस्कन्ध स्थितां भीषणाम् ।
 कन्याभिः करवालखेट विलसद् हस्ताभिरासेविताम् ॥
 हस्तैश्चक्र गदासिखेट विशिखांश्चापं गुणं तर्जनीम् ।
 विभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ॥

विद्युत् प्रभा के समान श्री अङ्गों से द्युतिमान, सिंह के कंधों पर बैठने के कारण भयंकर प्रतीत होने वाली, हाथों में ढाल और तलवार लिए हुए अनेक कन्याओं द्वारा सेवित, अपने हाथों में चक्र, गदा, तलवार, ढाल, धनुष, बाण, पाश और तर्जनी मुद्रा धारण किये हुए, मस्तक पर चन्द्रमुकुट शोभिता, अग्निमय स्वरूपा, त्रिनेत्र धारिणी दुर्गा देवी को मैं शत-शत नमन करता हूँ ।

बारहवें अध्याय में पराम्बा ने स्वयं अपने मुख से इस ग्रंथ के पाठ, मंत्रों के जप की, यज्ञ की पूजा उपासना की फल-श्रुति कही है । अतः साधकों के लिए बड़ा ही महत्वपूर्ण है ।

इस दुर्गा सप्तशती में तेरह अध्याय और तीन चरित्र हैं उनमें दैत्यों का विनाश माँ के शौर्य की अद्भुत लीलाओं का गान है; जिसके द्वारा पराम्बा ने देवों की सुरक्षा और जगत् का कल्याण किया है । इसका पाठ सिद्धिप्रद है । माँ ने स्वयं देवों से इस प्रकार कहा—

एभिः स्तवैश्च माँ नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः ।

तस्यां सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम् ॥ १२/२

देवताओं ! जो एकाग्र चित्त होकर प्रतिदिन इन स्तुतियों द्वारा मेरी स्तुति करेगा, उसकी सारी बाधा मैं निश्चय ही दूर कर दूँगी । अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी में 'दुर्गा सप्तशती' के पाठ

का विशेष महत्त्व है । (कृष्ण पक्ष में चन्द्रक्षीण होता है । इन तिथियों में क्रमशः मन भी लीन होता है । अतः मन तन्मय होने पर पाठ की स्वाभाविक महिमा होगी ।) मेरे पाठ से पाप, दरिद्रता, शत्रुभय, त्रिताप, सब विघ्न, भयंकर ग्रह पीड़ाएँ शान्त हो जाती हैं । पीठों में मेरा नित्य निवास रहेगा । नव दुर्गा पाठ के वर्ष में चार अवसर हैं आश्विन शुक्लपक्ष, माघ शुक्लपक्ष चैत्र शुक्लपक्ष तथा आषाढ़ शुक्लपक्ष प्रतिपदा से नवमी तक विशेष पूजन करना चाहिये । बाल-ग्रह-पीड़ा, दुःस्वप्न-निवृत्ति तथा हर प्रकार के भय नष्ट हो जाते हैं । इस प्रकार विस्तार से माहात्म्य बतलाकर मैं जगदम्बे अन्तर्धान हो गयीं । देवता भी प्रसन्न होकर अपने-अपने कार्य में लग गये । शेष दैत्य लोग पाताल लोक में चले गये ।

मेघा ऋषि ने कहा—राजन् इस प्रकार समय-समय पर देवी प्रकट होती हैं समृद्ध करती हैं । प्रलय में काली, महामारी में सनातनी देवी । वे ही अभ्युदय हेतु लक्ष्मी रूप में प्रकट होती हैं ।

स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्धूप गन्धादिभिस्तथा ।

ददाति वित्तं पुमांश्च मतिं धर्मं गतिं शुभाम् ॥ १२/४१

विधिवत् पूजन करने से धन, धान्य, पुत्रादि की प्राप्ति होती ही है; सद्बुद्धि भी मिलती है जिससे सत् धर्म करने में प्रवृत्ति होती है ।



त्रयोदशोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ बालार्क मण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् ।

पाशाङ्कुश वराभीतीर्धारयन्तीं शिवां भजे ॥

रवि-शिशु की प्रथम कोमल रश्मियों के समान कान्ति युक्त, तीन नेत्र तथा चार भुजायें धारण किये हुए हैं; जो अपनी भुजाओं में क्रमशः पाश, अंकुश वर एवं अभय मुद्रा धारण किये रहती हैं, मैं उन शिवा देवी का ध्यान करता हूँ ।

ध्यानोपरान्त ऋषि मेधा ने कहा—हे राजन् ! इस जगत् को कारण करने वाली, ज्ञान उत्पन्न करने वाली, जिस देवी के उत्तम माहात्म्य का वर्णन किया है, भगवान् विष्णु की माया स्वरूपा उन भगवती के द्वारा हो तुम, ये वैश्य तथा दूसरे विवेकी जन मोहित होते हैं हुए, हैं और होंगे । अतः तुम उन्हीं परमेश्वरी की शरण में जाओ; उनकी आराधना करो क्योंकि वे पराम्बा आराधना से प्रसन्न होकर भोग; स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करती हैं । महर्षि के वचन सुन तथा चरणों में प्रणाम कर राजा तथा वैश्य दोनों ही ममता का परित्याग कर तपस्या में लग गये । माँ भगवती के दर्शनों की महत्वाकांक्षा को लेकर पावन नदी के तट पर मृत्तिका—मिट्टी की प्रतिभा बनाकर पुष्प, धूप, दीप, गन्ध आदि से विधिवत पूजन करते तथा व्रत उपवास करते हुए कठिन आराधना में लग गये थे ।

घोर तप से प्रसन्न हो माँ ने दर्शन दिए और वरदान मांगने को कहा—राजा की वासना राज्य के प्रति बनी हुई थी अतः उसने इस जन्म में राज्य मिले और अगले जन्म में भी राजा बनूँ यह वर मांगा । समाधि ने विरक्त एवं मुमुक्षु होने

के कारण मुक्ति का वर प्राप्त किया । अतः राजा सुरथ को राज्य तथा समाधि वैश्य को दिव्य ज्ञान मिला, जिससे वह मुक्त हो गया । यही सुरथ अगले जन्म में राजा बन कर सार्वर्णिक मनु होंगे ।

स्पष्ट है कहनामयी माँ भक्त की अभिलाषानुसार भक्ति एवं मुक्ति दायिनी हैं ।



उपसंहार

इस प्रकार इन तेरह अध्यायों के मनन करने से पाठकों को पराम्बा के असली स्वरूप का बोध तो होगा ही, साथ ही अपौरुषेय वेद प्रतिपाद्य जैसे अन्य भक्ति शास्त्र विद्वानों ने बताये हैं वैसे ही दुर्गा-सप्तशती ग्रन्थ को स्थान देंगे। आइये, चिन्तकों को कुछ प्रमाणों से अवगत करा दें—भक्ति वेद प्रति पाद्य है।

शांडिल्य ने स्वयं कहा है—भक्ति प्रमेया श्रुतिभ्यः पुराणेति हासाभ्यां च । १-२/६-१० । इसका अभिप्राय है कि ईश्वर ने स्वयं अपनी वाणी रूप श्रुति से आज्ञा की है कि श्रुति तथा इतिहास पुराणों से भक्ति का स्वरूप जानना चाहिए। इन सूत्रों की व्याख्या में नारायण तीर्थ ने ऋग्वेद के ऐसे अनेक मंत्र उद्धृत किए हैं, जिनमें नाम स्मरण, श्रवण, कीर्तन, भगवदर्पण, शरणागति, भगवत्प्रसाद, आत्म समर्पण आदि का वर्णन है। न केवल साधन रूपा श्रवण कीर्तनादि लक्षणा भक्ति का ही वर्णन है, अपितु वेदों में भावमयी रागात्मिका, रसमयी भक्ति का वर्णन है। ऋग्वेद के ६, १, ५ में परमेश्वर का एक रक्षक एवं माता पिता के रूप में वर्णन मिलता है। ऋग्वेद के ८, ६८, ११ में अत्यन्त भक्ति भाव के साथ माता-पिता के रूप में वर्णन किया गया है। वहाँ इन्द्र को पिता ही नहीं, पितृतम एवं श्रेष्ठ सखा के रूप में निर्दिष्ट किया गया है। किसी-किसी मन्त्र में ऐसे अनुराग का वर्णन है जैसे पत्नी अपने पतिदेव का आलिङ्गन कर रही है—परिष्वजन्ते जनः यो यथा पतिम् (१०, ४३, १)। ऋग्वेद (१०, ४०, २) में तो परमेश्वर के प्रति प्रेयसी-प्रियतम भाव की पराकाष्ठा ही कर दी गई है। ऐसा लगता है मानो परकीया भाव से उपासना का वही बीज हो।

भक्ति क्या है ?

सभी भक्ति-दर्शन तात्पर्यतः परमेश्वर के प्रति परमानुरक्ति

को ही 'भक्ति' कहते हैं। नारद ने भक्ति का रूप परमप्रेम और स्वरूप अमृत कहा है। शाण्डिल्य ने अमृत को फल कहा है। अंगिरा ने स्नेह-प्रेम, एवं श्रद्धा के अतिरिक्त ईश्वर के प्रति अलौकिक अनुराग को ही 'भक्ति' की संज्ञा दी है। अज्ञातकर्तृक भक्ति-मीमांसा में भक्ति को मन के 'उल्लास-विशेष' का नाम दिया गया है। ये आचार्य भक्ति को भाव कहना पसन्द नहीं करते। उनके मत में रस की समग्र सामग्री से भक्ति का आविर्भाव होता है, इसलिए वह रस है। वह जन्य नहीं है, स्वयं उल्लसित रस हैं। स्वामी श्री हरिहरानन्दारण्य भक्ति के दो भेद मानते हैं। जिसमें सुखोपलब्धि होती है वह 'अपरा भक्ति' होती है और जिसमें शान्ति होती है वह 'परा'। अपरा भक्ति से परा भक्ति निष्पन्न होती है। दृढरति से अन्य के प्रति वैराग्य हो जाता है और केवल भजनीय के स्वरूपख्याति होकर उसमें निष्ठा हो जाती है। यह परा भक्ति है और इसी से शाश्वती शान्ति मिलती है।

यह भक्ति ज्ञानरूप नहीं है; अनुराग रूप है। अनुरागी पर भगवान् की कृपा होती है और पूर्ण निःश्रेयस की प्राप्ति हो जाती है। इसका अभिप्राय यह है कि प्रयोजन की पूर्ति के लिए भक्ति सर्वथा समर्थ है जिनका यह कथन है कि भक्ति एक क्रिया है और उससे प्राप्त होने वाला फल अनन्त नहीं हो सकता। उनका यह आक्षेप यथार्थ नहीं है क्योंकि भक्ति प्रयत्नानुविधायी नहीं है।

इस प्रकार संपूर्ण पाठ के बाद नवार्ण जप और देवी सूक्त का पाठ करना चाहिये। इसके पश्चात् प्राधानिक रहस्य, वैकृतिक रहस्य एवं मूर्ति रहस्य क्रमशः तीनों रहस्य दिए गये हैं। इन रहस्यों की भी बड़ी महिमा है।



क्षमा प्रार्थना

अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया ।

दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वरि ॥ १

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।

पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वरि ॥ २

मंत्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वरि ।

यत्पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ ३

अपराधशतं कृत्वा जगदम्बेति चोच्चरेत् ।

यां गतिं समवाप्नोति न तां ब्रह्मादयः सुराः ॥ ४

सापराधोऽस्मि शरणं प्राप्तस्त्वां जगदम्बिके ।

इदानीमनुकम्प्योऽहं यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ५

अज्ञानाद्विस्मृतेभ्रान्त्या यन्न्यूनमधिकं कृतम् ।

तत्सर्वं क्षम्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरि ॥ ६

कामेश्वरि जगन्मातः सच्चिदानन्दविग्रहे ।

गृहाणार्चामिमां प्रीत्या प्रसीद परमेश्वरी ॥ ७

गुह्याति गुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।

सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादात्सुरेश्वरि ॥ ८

भगवती दुर्गा जी के बत्तीस नाम भी बहुत प्रसिद्ध हैं । उनमें नामों का स्मरण कर लेने से भी सभी प्रकार का लाभ होता है ।

एक समय देवताओं की पूजा से प्रसन्न हुई पराम्बा ने स्वयं अपने आप कृपा कर देवताओं को यह बत्तीस नामों की माला सभी आपत्तियों का नाश करने वाली बतलाई थी । इन नामों द्वारा मधु (शहद) मिलाकर सफेद तिलों से लाख आहुति करे तो सभी विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं । इसका पुरुश्चरण तीस हजार का है । गुरुजनों से पूछकर विधिवत् पुरुश्चरण करने से सब प्रकार का लाभ होता है ।

अथ दुर्गाद्वात्रिंशन्नाममाला

दुर्गा दुर्गातिशमनी दुर्गापद्मि निवारिणी ।

दुर्गमच्छेदिनी दुर्गसाधिनी दुर्गनाशिनी ॥

दुर्गतोद्धारिणी दुर्गनिहन्त्री दुर्ग मापहा ।

दुर्गमज्ञानदा दुर्गदैत्यलोकदवानला ॥

दुर्गमा दुर्गमालोका दुर्गमात्म स्वरूपिणी ।

दुर्गमार्गप्रदा दुर्गमविद्या दुर्गमाश्रिता ॥

दुर्गमज्ञानसंस्थाना दुर्गमध्यानभासिनी ।

दुर्गमोहा दुर्गमगा दुर्गमार्थ स्वरूपिणी ॥

दुर्गमासुरसंहन्त्री दुर्गसाधुधारिणी ।

दुर्गमाङ्गी दुर्गमता दुर्गम्या दुर्गमेश्वरी ॥

दुर्गभीमा दुर्गभामा दुर्गभा दुर्गदारिणी ।

नामावलिमिसां यस्तु दुर्गया मम मानवः ॥

पठेत् सर्वभयान्मुक्तो भविष्यति न संशयः ॥

इसके पश्चात् निम्न स्तोत्र बहुत प्रसिद्ध है :

अथ देव्यपराधक्षमापन स्तोत्रम्

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो

न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथाः ।

न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं

परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम् ॥

विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया

विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्या च्युतिरभूत् ।

तदेतत्क्षन्तयं जननि सकलोद्धारिणि शिवे

कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥

पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः

परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः ।

मदीयोज्यं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥

जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता
न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया ॥
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥

परित्यक्ता देवा विविधविधिसेवाकुलतया
मया पञ्चाशीतेरधिकमुपनीते तु वयसि ।
इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम् ॥

श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा
निरातङ्को रङ्को विहरति चिरं कोटिकनकैः ।
तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं
जनः को जानीते जननि जपनीय जपविधौ ॥

चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो
जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः ।
कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं
भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम् ॥

न मोक्षस्याकाङ्क्षा भवविभववाञ्छापि च न मे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः ।
अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै
मृडानी रुद्राणी शिव-शिव भवानीति जपतः ॥

नाराधितासि विधिना विविधोपचारैः
किं रुक्षचिन्तनपरैर्न कृतं वचोभिः ।
श्यामे त्वमेव यदि किञ्चन मय्यनाथे
धत्से कृपामुचितमम्ब परं तवैव ॥

आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं
करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि ।
नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः
क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति ॥

जगदम्ब विचित्रमत्र किं परिपूर्णा करुणास्ति चेन्मयि ।

अपराधपरम्पराऽऽवृत्तं न हि माता समुपेक्षते सुतम् ॥

मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा न हि ।

एवं ज्ञात्वा महादेवि यथायोग्यं तथा कुरु ॥

श्री दुर्गा जी की आरती

जय अम्बे गौरी मैया जय मंगल मूर्ती,

मैया जय मंगल करणी, मैया जय आनन्द करणी ।

तुमको निशिदिन ध्यावत हरि ब्रह्मा शिवरी ॥ जय अम्बे ॥ १ ॥

मांग सिन्दूर विराजत टीको मृगमद को, मैया टीको ... ।

उज्ज्वल से दोऊ नैना चन्द्रबदन नीको ॥ जय अम्बे ॥ २ ॥

कनक समान कलेवर रक्ताम्बर राजे, मैया ... ।

रक्त पुष्प गल माला, कण्ठन पर साजें ॥ जय अम्बे ॥ ३ ॥

केहरि वाहन राजत खड्ग खपर धारी, मैया ... ।

सुर नर मुनि जन सेवत, तिनके दुःख हारी ॥ जय अम्बे ॥ ४ ॥

कानन कुण्डल शोभित, नासाग्रे मोती, मैया ... ।

कोटि चन्द्र दिवाकर राजत समज्योति ॥ जय अम्बे ॥ ५ ॥

शुम्भ-निशुम्भ विदारे, महिषासुर धाती, मैया ... ।

धूम्र विलोचन नैना, निशिदिन मदमाती ॥ जय अम्बे ॥ ६ ॥

चण्ड-मुण्ड संहारे, शोणित बीज हरे, मैया ... ।

मधु-कैटभ दोउ मारे, सुर नर भयहीन करे ॥ जय अम्बे ॥ ७ ॥

ब्रह्माणी, रुद्राणि, तुम कमला रानी, मैया ... ।

आगम निगम बखानी, तुम शिव पटरानी ॥ जय अम्बे ॥ ८ ॥

चौसठ योगिनी गावत, नृत्य करत भैरो, मैया ... ।

बाजत ताल मृदंग, अरु बाजत डमरू ॥ जय अम्बे ॥ ९ ॥

तुम हो जग की माता तुम ही हो भरता, मैया ... ।

भक्तन के दुःख हरता, सुख सम्पति करता ॥ जय अम्बे ॥ १० ॥

भुजा चार अति शोभित, वर अभय धारी, मैया ... ।

मन बांछित फल पावत, सेवत नर-नारी ॥ जय अम्बे ॥ ११ ॥

कंचन थाल विराजत अगर कपूर बाती, मैया ... ।

श्री माल केतु में राजत, कोटि रतन ज्योति ॥ जय अम्बे ॥ १२ ॥

अम्बे जी की आरती, जो कोई नर गावै, मैया ... ।

कहत शिवानन्द स्वामी, सुख-सम्पति पावै ॥ जय अम्बे ॥ १३ ॥

अथ बगलाअष्टोत्तरनामस्तोत्रम्

नारद उवाच

भगवन् ! देवदेवेश ! सृष्टि-स्थिति-लयात्मक ! ।

शतमष्टोत्तरं नाम्नां बगलाया वदाऽधुना ॥ १

श्रीभगवानुवाच

शृणु वत्स ! प्रवक्ष्यामि नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ।

पीताम्बर्या महादेव्याः स्तोत्रं पापप्रणाशनम् ॥ २

यस्य प्रपठनात् सद्यो वादी मूको भवेत् क्षणात् ।

रिपूणां स्तम्भनं याति सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ ३

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीपीताम्बर्यष्टोत्तरशतनामस्तोत्रस्य सदाशिव-ऋषिरनु-
ष्टुप्छन्दः, श्रीपीताम्बरी देवता श्रीपीताम्बरीप्रीतये जपे विनियोगः ।

ॐ बगला विष्णु-वनिता विष्णु-शङ्कर-भामिनी ।

बहुला वेदमाता च महाविष्णुप्रसूरपि ॥ १

महामत्स्या महाकूर्मा महावाराहरूपिणी ।

नरसिंहप्रिया रम्या वामना वदुरूपिणी ॥ २

जामदग्न्यस्वरूपा च रामा रामप्रपूजिता ।

कृष्णा कपर्दिनी कृत्या कलहा कलविकारिणी ॥ ३

बुद्धिरूपा बुद्धभार्या बौद्ध-पाखण्ड-खण्डिनी ।

कल्किरूपा कलिहरा कलिदुर्गतिनाशिनी ॥ ४

कोटिसूर्यप्रतीकाशा कोटि-कन्दर्प-मोहिनी ।

केवला कठिना काली कलाकैवल्यदायिनी ॥ ५

केशवी केशवाराध्या किशोरी केशवस्तुता ।

रुद्ररूपा रुद्रमूर्ती रुद्राणी रुद्रदेवता ॥ ६

नक्षत्ररूपा नक्षत्रा नक्षत्रेश-प्रपूजिता ।

नक्षत्रेश-प्रिया नित्या नक्षत्रपति-वन्दिता ॥ ७

नागिनी नागजननी नागराज-प्रवन्दिता ।
 नागेश्वरी नागकन्या नागरी च नगात्मजा ॥ ८
 नगाधिराज-तनया नगराज-प्रपूजिता ।
 नवीना नीरदा पीता श्यामा सौन्दर्यकारिणी ॥ ९
 रक्ता नीला धना शुभ्रा श्वेता सौभाग्यदायिनी ।
 सुन्दरी सौभगा सौम्या स्वर्णभा स्वगतिप्रदा ॥ १०
 रिपुत्रासकरी रेखा शत्रुसंहारकारिणी ।
 भामिनी च तथा माया स्तम्भिनी मोहिनी शुभा ॥ ११
 राग-द्वेषकरी रात्री रौरव-ध्वंसकारिणी ।
 यक्षिणी सिद्धनिवहा सिद्धेशा सिद्धिरूपिणी ॥ १२
 लङ्कापति-ध्वंसकरी लङ्केशरिपु-वन्दिता ।
 लङ्कानाथ-कुलहरा महारावणहारिणी ॥ १३
 देव-दानव-सिद्धौघ-पूजिता परमेश्वरी ।
 पराणुरूपा परमा परतन्त्रविनाशिनी ॥ १४
 वरदा वरदाराध्या वरदान-परायणा ।
 वरदेशप्रिया वीरा वीरभूषण-भूषिता ॥ १५
 वसुदा बहुदा वाणी ब्रह्मरूपा वरानना ।
 बलदा पीतवसना पीतभूषण-भूषिता ॥ १६
 पीतपुष्प-प्रिया पीतहारा पीतस्वरूपिणी ।
 इति ते कथितं विप्र ! नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ॥ १७
 यः पठेद् पाठयेद् वाऽपि श्रृणुयाद् वा समाहितः ।
 तस्य शत्रुः क्षय सद्यो याति नैवात्र संशयः ॥ १८
 प्रभातकाले प्रयतो मनुष्यः
 पठेत् सुभक्त्या परिचिन्त्य पीताम् ।
 द्रुतं भवेत् तस्य समस्त-वृद्धि-
 विनाशमायाति च तस्य शत्रुः ॥ १९

अथ सप्तश्लोकी दुर्गा

शिव उवाच—

देवि त्वं भक्त सुलभे सर्वं कार्यं विधायिनी ।

कलौ ही कार्यं सिद्ध्यर्थमुपायं ब्रूहि यत्नतः ॥

देव्युवाच—

शृणु देव प्रवक्ष्यामि कलौ सर्वेष्ट साधनम् ।

मया तवैव स्नेहेनाप्यम्बा स्तुतिः प्रकाश्यते ॥

ॐ अस्य श्री दुर्गा सप्तश्लोकी स्तोत्रमंत्रस्य नारायण ऋषिः, अनुष्टुप् छंदः

श्री महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वत्यो देवताः,

श्री दुर्गा प्रीत्यर्थं सप्तश्लोकी दुर्गापाठे विनियोगः ।

ॐ ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ।

बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥१॥

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः

स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।

दारिद्र्य दुःख भय हारिणि कात्वदस्या,

सर्वोपकार करणाय सदाद्रं चित्ता ॥२॥

सर्वं मङ्गल माङ्गल्ये शिवे सर्वार्थ साधिके ।

शरण्ये त्र्यम्बिके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते ॥३॥

शरणागत दीनार्त परित्राण परायणे ।

सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणी नमोऽस्तुते ॥४॥

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्व-शक्ति-समन्विते ।

भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तुते ॥५॥

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा,

रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।

त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां,

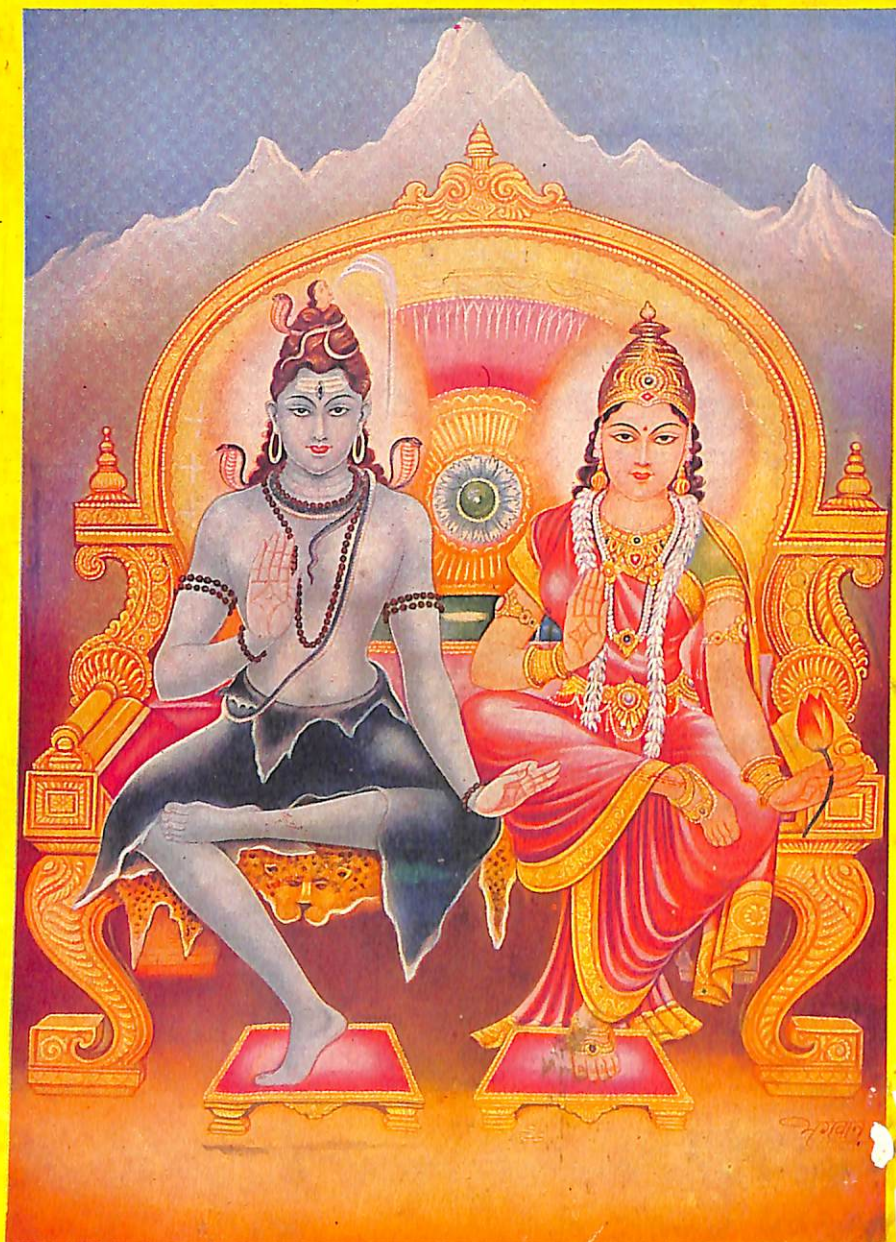
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥६॥

सर्वं बाधा प्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ।

एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥७॥

“श्री श्री सप्तश्लोकी दुर्गा सम्पूर्णा ॥”

कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम् ।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवान्सहितं नमामि ॥



पुनीत शादमां के प्रबन्ध में सरस्वती प्रेस, ठठेरवाड़ा, निकट सर्राफा
मेरठ शहर में मुद्रित । फोन (०१२१) २३४८६, २३७३३

SVB
S.No
Subj
Sub